मान मन्दिर बरसाना

मूल्य १०/-

मासिक पत्रिका, अप्रैल २०२३, वर्ष ०७, अंक ०४

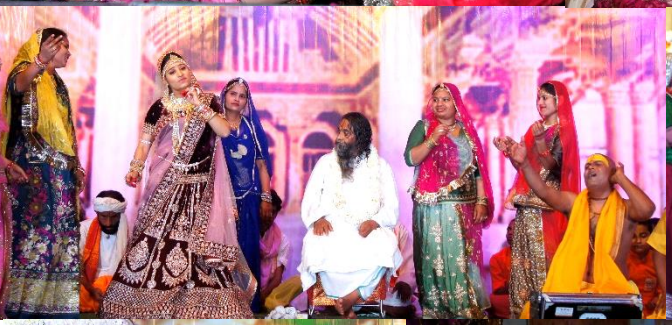

‘मान मन्दिर कला अकादमी’ द्वारा
‘रंगीली होली २०२३’ पर नाटिका–
रानी रत्नावती की प्रस्तुति

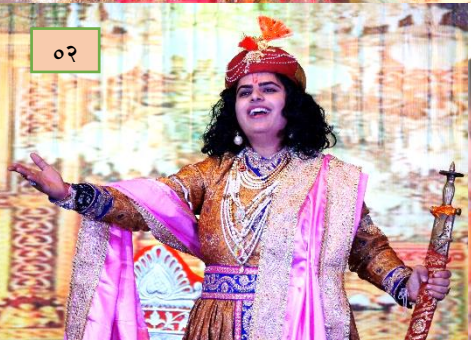

अनुक्रमणिका

विषय- सूची — पृष्ठ- संख्या

१ अन्तरंग लीलास्थली 'श्रीगह्वर-वाटिका'.....०५
२ ब्रज-संस्कृति 'सहज स्वभाव'.....०८
३ ब्रजरज-आश्रय से श्रीकृष्णप्रेम सहज ११
४ भवरोग की औषधि 'श्रीभगवन्नाम'.....१३
५ श्रीब्रजभक्ति के सूर्य 'बाबाश्री'.....१५
६ बाबाश्री की संरचनाएँ.....२०
७ श्रीमीराजी की रसोपासना.....२३
८ कृष्णावतार का प्रयोजन 'महारास'.....२५
९ संस्कार से स्मृति.....२८
१०भगवद्रस में बाधक विषयरस.....३०
११भारत का गौरव 'श्रीमाताजी गौशाला'.....३१
१२ हे हिन्दूजनों ! उठो-जागो.....३३

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो | — *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922

(Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

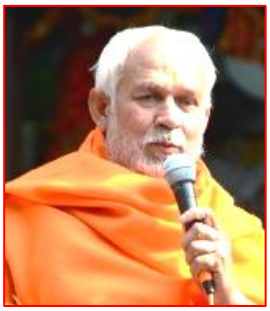

यह संसार केवल मन का विलासमात्र है, दीखने पर भी नष्टप्राय ही है, भ्रममात्र है, स्वप्न के समान माया का खेल है अर्थात् अज्ञान से कल्पित है। इस मिथ्या जगत को सत्य मानकर हम अपने सत्यस्वरूप से विलग हो जाते हैं और आत्मकल्याण से बहुत दूर रहते हैं। अनन्तकाल इसी तरह अज्ञानान्धकार में यातना झेलते हुए व्यतीत होता रहता है। ब्रह्मवादी महात्माजन आत्मकल्याण के अनेक साधन बताते हैं। जैसे अग्नि में तपाया हुआ सोना अपना मैल छोड़कर वास्तविक शुद्ध रूप में परिणित हो जाता है, वैसे ही जीव भी सद्गुरुजनों के द्वारा बताये हुए 'भक्तियोग' के द्वारा अपने मन को दुर्वासनाओं से मुक्त व निर्मल बनाकर परम सुहृद 'भगवान्' को प्राप्त कर लेता है। 'भगवान् की पावन लीलाओं–कथाओं' के श्रवण–कीर्तन से ज्यों–ज्यों चित्त का मैल धुलता है, त्यों–त्यों उसे सूक्ष्म वस्तु के वास्तविक तत्त्व के दर्शन होने लगते हैं। भगवान् बड़े दयालु हैं जो उन्होंने जीव–कल्याण के निमित्त ऐसी–ऐसी लीलाएँ की हैं कि उनमें उसकी सहज रति हो जाती है। इस तरह प्रभु ने हमारे कल्याण के लिए बड़ा सरलतम मार्ग प्रस्तुत कर दिया। हमारी चोरी की सहज प्रकृति है, अतः उन्होंने चोरी–लीला की; रास किया ताकि रास–रस में डूबकर सर्वथा काममुक्त हो जाएँ। किसी भी तरह तन्मयता हो जाए, बस वही है भगवत्प्राप्ति का सुगम उपाय।

हम सब ब्रजवासियों के परम हितैषी ब्रज की निधि पूज्य 'श्रीबाबामहाराज' मानों भगवद्–रूप में ही अवतरित हो 'भक्तिरस' में अवगाहन करा रहे हैं, दिन–रात 'श्रीराधामाधव के गुण–कीर्तन' में अनुरक्ति देकर कृतार्थ किया है; ऐसे 'महापुरुषों का संग' मिलना हमारा परम सौभाग्य है; आज ब्रज में 'घर–घर में कीर्तन, गाँव–गाँव में प्रभात फेरी' उन्हीं की कृपा का फल है, उनके परम वैराग्ययुक्त ७० वर्ष के अखण्ड ब्रजवासकाल में उनका 'सत्संग' आज हमारा जीवनाधार है, जो हम–आप सभी अपनी पत्रिका 'मानमन्दिर बरसाना' के माध्यम से पढ़ रहे हैं।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

☀ अन्तरंग लीलास्थली 'श्रीगह्वर–वाटिका' ☀

सबसे बड़े सुख (परमानन्द) को देने वाली एकमात्र श्रीराधारानी (प्रेम की अधिष्ठात्री महादेवी) ही हैं, उनके अलावा और न कोई था, न है तथा न ही होगा। इसीलिए श्रीभगवतरसिकजी ने एक पद में कहा है – **भगवत रसिक सहायक सब दिन, सर्वोपरि सुख दानी।**

ऐसी महाप्रेम देवी की अन्तरंग नित्य लीला भूमि 'श्रीगह्वरवन' है, जहाँ से ही ब्रजप्रदेश व सम्पूर्ण विश्व में विशुद्ध प्रेमरस प्रसरित हो रहा है। इस दिव्यातिदिव्य गह्वरवन के रस का साक्षात् अनुभव व रसास्वादन परमपूज्य श्रीबाबामहाराज नित्य संध्याकालीन आराधना (श्रीजी की सहचरी स्वरूपा बाल–आराधिकाओं के महारास) में हम सबको करा रहे हैं – **जो रस बरस रह्यो गह्वरवन, सो रस तीन लोक में नाहिं।**

ऐसे गह्वरवन की रज को नमस्कार है, जहाँ वृषभानुलाड़िली खेलती हैं, नित्य लीला–विलास करती हैं। स्वामी हरिदासजी कहते हैं –

प्यारी जू आगे चलि आगे चलि गह्वर वन भीतर,
जहाँ बोलै कोइल री। (श्रीकेलिमाल)

ये वह गह्वरवन है, जहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण अपने को कृतार्थ मानने लग गये। आज से पहले श्रीकृष्ण ने अपने को कृतार्थ नहीं माना था जबकि बहुत अवतार हुए, बहुत सी लीलाएँ हुई, बहुत से उनके भक्त हुए लेकिन गह्वर वन बरसाना पहुँचकर अपने को कृतार्थ मानते हैं। कौन अपने को कृतार्थ मानते हैं ? वे कृष्ण जो योगियों को, योगियों के देव इन्द्र आदि को और शिव आदि को भी दुर्लभ हैं। कौन से कृष्ण ? वही मधुसूदन। 'मधुसुदन' मतलब 'मधु' राक्षस को मारने वाला नहीं; 'मधु' माने जिनका 'प्रेमरस' ही एकमात्र आहार है, ये जो प्रेमी श्रीकृष्ण हैं, जो संसार में अनन्त प्रेम बाँटते हैं, जो मधु का आस्वादन कराते हैं; वे ही जाकर के 'गह्वर वन' बरसाने में कृतार्थ हो जाते हैं। एक और कुछ दिनों पहले की घटना है कि एक भक्त श्रीकिशोरीअलीजी अपनी स्त्री 'किशोरी' की याद में 'किशोरी–किशोरी' कहते गह्वरवन में व्याकुल होकर घूम रहे थे, इधर से प्रियाजी अपनी सखियों सहित आ रहीं थीं। अपनी आवाज सुनकर वे बोलीं कि यह कौन है ? जो मेरा नाम लेकर इतनी व्याकुलता से मुझे पुकार रहा है ? सखियाँ बोलीं कि किशोरीजी ! ये तो अपनी स्त्री को पुकार रहा है, ये आपको नहीं बुला रहा। अकारण करुणा की राशि श्रीराधा ने कहा कि हे सखी ! इस गह्वरवन में यह व्यक्ति मेरा ही नाम ले–ले पुकार रहा है, इसे मेरे पास लाओ। श्रीराधारानी ने अकारण ही उन पर दया कर दी। ऐसे अदभुत महिमामय गह्वरवन के बारे में अब क्या कहा जाए ? गह्वरवन के सम्बन्ध में कहा गया है –

यत्र गह्वरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलि विलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

(श्रीवृषभानुपुरशतक–७)

ये 'गह्वरवन' युगल सरकार श्रीराधामाधव के मन को हरण कर लेता है। इसमें इतनी आकर्षण शक्ति इसलिए है क्योंकि स्वयं श्रीराधारानी ने अपने हाथों से इस वन को बनाया है, यहाँ की लता–पताओं को अपने हाथों से लगाया है और इसे लीलाविलास–रस से सींचा है; ये गह्वरवन बहुत ही महत्वपूर्ण वन है क्योंकि ऐसा सौभाग्य किसी भी और ब्रज के वन को नहीं मिला जो गह्वरवन को मिला। श्रीराधारानी ने इसे अपने हाथों से सजाया है और इसमें दोनों नित्य लीला करते हैं। मयूरकुटी और

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का Account number दिया जा रहा है –
SHRI MATAJI GAUSHALA,
GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd
A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,
MOB. NO. – 9927916699

मान मन्दिर के बीच का भाग गह्वर वन है, जो युगल सरकार का नित्य विहार स्थल है ।

गह्वरवन का प्रार्थना–मन्त्र

गहवराख्याय रम्याय कृष्णलीलाविधायिने ।
गोपीरमण सौख्याय वनाय च नमो नमः ।।

(वृहन्नारदीये)

"सुरम्य गह्वरवन" श्रीकृष्ण का लीला स्थान, गोपियों के सहित रमण करने वाले श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिये ही जो विराजमान है, आपको प्रणाम है।

जिस बरसाने में गह्वरवन है, जिसे श्रीराधा ने स्वयं अपने नित्य केलि–विलासों से बनाया है।" इसीलिए यह स्थल नित्य विहार का माना गया है।

'नित्य विहार' का तात्पर्य – "जहाँ एक क्षण के लिए भी वियोग नहीं है।" स्वकीया एवं परकीया दोनों से यह भिन्न उपासना पद्धति है। स्वकीया में पितृगृह गमन से वियोग का अनुभव होता है और परकीया में तो संयोग का अवसर भी कम ही मिलता है और वह भी अनेक बाधाओं के बाद। वहाँ बाधाओं को प्रेम की कसौटी या प्रेम की तीव्रता का मापदण्ड माना जाता है। स्वकीया वाले श्रीराधा के मायिक व कल्पित पति के नाम से ही अरुचि रखते हैं। वे परकीयत्व का किंचित् मात्र संस्कार भी अपनी अनन्यता में स्वीकार नहीं करते, इसीलिए श्री गह्वर वन में रसिकों ने वियोग शून्य नित्य मिलन की उपासना स्वानुभव से लिखी है। जिनमें युगल इतने सुकुमार हैं कि एक क्षण का भी वियोग असह्य है किन्तु वियोग के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता है, यह भी एक सत्य है। इसलिए यहाँ अति सूक्ष्म विरह भी गाया गया है। वह 'विरह' मिलन की अवस्था में भी निरन्तर पिपासा बढ़ाता रहता है,यही प्रेम–वैचित्री है।

वियोज्यते वियुक्तं वा न कदापि वियोक्ष्यते ।
क्षणार्द्धसत्कोटियुगं युगलं तत्र गहवरे ॥
योगे वियुक्तवन्मानि ललितैकाश्रयं स्वयम् ।
करुणाशक्तिसम्पूर्णं गौरं नीलं च गह्वरे ॥

(श्रीवृषभानुपुरशतक–११,१२)

अर्थात् – "जिस गह्वर वन में, कोटि–कोटि युग भी, आधे क्षण के समान, नित्य संयोग में, प्रेम पिपासा में व्यतीत हो जाते हैं। जैसे – श्रीमद् राधासुधानिधि, जो श्रीराधा की अनेक लीलाओं का सागर है, जिसमें उनकी विविध छवियाँ स्वकीया–परकीया की प्रस्तुत की गयी हैं। यद्यपि साम्प्रदायिक आग्रह से सम्पूर्ण ग्रन्थ "श्रीराधा सुधा निधि" को अपनी पद्धति में सीमित करने का प्रयास किया गया है किन्तु संतजन सभी पद्धतियों का सम्मान करके अपने आस्वादन में लग जाते हैं। खण्डन का बात–बतंगड़, शुद्ध नीरस कलुषित लोग ही किया करते हैं।

वहाँ पर भी गह्वरवन की मिलन–पद्धति की छवि का वर्णन आता है (श्रीराधासुधानिधि –१७३) अर्थात् – वियोग तो दूर रहा, वियोगाभास से ही कोटि–कोटि प्रलयाग्नि की ज्वाला, युगल को बाहर व भीतर अनुभव होने लग जाती है; ऐसा गाढ़ प्रेम है। जहाँ अति सूक्ष्म विरह की कल्पना भी इतनी तीव्रतम पिपासा जगाती रहती है। इसीलिए अंक में स्थित, मिलित अवस्था में विरहानुभूति होने लग जाती है (श्रीराधासुधानिधि – ४६)। इसलिए 'वृन्दारण्य' से तात्पर्य 'पंचयोजनात्मक वृंदावन' से है, जिसमें 'श्रीगह्वरवन' भी आता है; दोनों पक्ष के टीकाकारों ने (श्रीराधासुधानिधि – ७८) ईशता, ईशानि, शचि आदि की व्याख्या में लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी आदि को ग्रहण किया है, कहीं इन सबको 'श्रीजी' का अंश और कहीं इनसे स्वतंत्र स्वामिनी के रूप में अर्थ किया है। इस प्रकार श्रीराधिका से ये सब सम्बद्धा होती हैं। चाहे अंश रूप से या आधीन रूप से, अंश–अंशिनी में कोई भेद नहीं है। जब हम इनको राधिकांश रूप में मान्यता देते हैं तो फिर राधालीला में उनके विभिन्न स्वरूपों से ही द्वेष क्यों है ? जबकि श्रीमद्भागवत में डंके की चोट पर कहा गया है। **'सर्वाः शरत् काव्यकथारसाश्रयाः'** (श्रीभागवतजी १०/३३/२६) अर्थात् "युगल सरकार ने सभी रसों का आस्वादन किया। वहाँ स्वकीया (अपनी विवाहिता)

या परकीया (दूसरे की विवाहिता) या नित्यदाम्पत्य (नित्यवधू) रस हो।"

बरसाने के वन–उपवन के सरोवरों में निशंक भाव से 'श्रीजी' क्रीड़ा करती हैं; गह्वरवन में 'श्रीराधासरोवर' उनकी 'बाल व श्रृंगार लीला' का एक स्थल है, यहाँ श्रीराधारानी अपनी सखियों के साथ जल–क्रीड़ा करती थीं, जिससे इसका नाम 'राधासरोवर' हो गया। इस सरोवर के प्रार्थना मन्त्र का भाव है कि "बड़े–बड़े देवता भी 'राधा–सरोवर' आने पर कृतार्थ हो जाते हैं, यह त्रिलोकी को भी मुक्त करने की शक्ति रखता है; ऐसे रमणीय तीर्थ को हम नमस्कार करते हैं।"

एक दिन राधिकारानी गह्वरवन में खेल रहीं थीं और श्रीकृष्ण उनको ढूँढ़ते–ढूँढ़ते नन्दगाँव से चले।

जब यहाँ पहुँचते हैं तो ललिताजी कहती हैं – "हे नन्दलाल ! तुम यहाँ कैसे आये ? "

श्यामसुन्दर कहते हैं – "ललिताजी ! हम श्रीराधारानी के दर्शन के लिये आये हैं।" ललिताजी कहती हैं –"अभी तुमको दर्शन तो नहीं मिलेंगे क्योंकि किशोरीजी अभी महल से चली नहीं हैं।" जबकि वे चल चुकी थीं। ये हैं लाड़लीजी की सखियाँ, ये टेढ़े ठाकुर से टेढ़ेपन से ही बात किया करती हैं।

रसिकों ने ऐसा लिखा है –

हम हैं राधे जू के बल अभिमानी।
टेड़े रहें मोहन रसिया सौं, बोलत अटपट बानी ।।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

ललिताजी बोलीं कि किशोरीजी तो अभी नहीं आ रही हैं, तब श्यामसुन्दर कहते हैं – "तुम लोगों ने हमारा नाम चोर रखा है, चोर से चोरी नहीं चलती और ललिताजी तुम समझ रही हो कि हम तुम्हारी चोरी समझ नहीं रहे।" ललिता जी पूछती हैं – "हमारी चोरी क्या है?" श्रीकृष्ण बोले – **"देख सखी, राधा जू ! आवत ! "** श्रीकृष्ण बोले –"अरे, लाड़लीजी तो आ रही हैं ! "

ललिताजी बोलीं – "कैसे पता ? " कृष्ण बोले – "किशोरीजी जब आती हैं, तब उनके शरीर की महक चारों ओर फैल जाती है। यह सुगन्ध बता देती है कि वह आ रही हैं। तुम नहीं छिपा सकती हो 'राधिका रानी' को। अरे ! चाँद को कोई क्या हाथ से ढक सकता है ? हम तुम्हारी चोरी जानते हैं।" वहाँ कहा गया है कि श्रीजी खेलती आ रही हैं अपनी सखियों के साथ। ये गह्वरवन की वही कुंजें हैं, वही लताएँ हैं, वही स्वरूप है। गह्वरवन में राधारानी जब कुंजों से होती हुई आ रही हैं तो उनके आँचल को हवा छूती हुई श्रीजी के अंग की सुगन्ध को लेकर के श्रीकृष्ण जहाँ हैं, वहाँ पहुँचती है। श्रीजी के अंग की सुगन्ध पाकर श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं। किशोरी जी के अंग की सुगन्ध पाकर ही श्रीकृष्ण धन्य हो जाते हैं? "धन्य ही नहीं, धन्य–धन्य हो जाते हैं। धन्य–धन्य ही नहीं, अति धन्य हो जाते हैं श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण अति से भी अधिक धन्य, यानि कृतार्थ धन्य हो जाते हैं।" (रा.सु.नि.१) तात्पर्य कि "सब कुछ मिल गया, पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी। जो पूर्ण ब्रह्म है, वह बरसाने में जाकर ही पूर्ण होता है।"

यह गह्वरवन बहुत ही महत्वपूर्ण वन है क्योंकि ऐसा सौभाग्य किसी अन्य ब्रज के वन को नहीं मिला, जो गह्वरवन को मिला, इस वन को राधारानी ने अपने हाथों से सजाया है और इसमें दोनों 'राधा–कृष्ण' नित्य लीला करते हैं। यहाँ ग्वालबालों ने गोपालजी से शंख देखने की इच्छा प्रकट की, गोपाल जी ने शंख दिखाया और बजाकर इस शिला पर रख दिया, जिससे यह शिला ही शंखाकार हो गयी एवं माखन खाकर यहाँ हाथ पौंछे थे, जिससे यह शिला चिकनी हो गयी। श्रीगह्वरवन में ही "श्रीवल्लभाचार्य जी" की बैठक एवं शंख शिला स्थल है। 'आचार्यचरण श्रीमद् वल्लभाचार्य जी' की १०८ बैठक जी में से एक बैठक गह्वरवन में है, जहाँ आपने १०८

'प्रेम' ही श्रीकृष्ण हैं, जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ श्रीकृष्ण नहीं हैं। चाहे गृहस्थी हो, चाहे साधु हो; जहाँ पर थोड़ा–सा भी कलह होता है, वहाँ श्रीकृष्ण नहीं हैं; अपने आपको इस थर्मामीटर से तौलना चाहिए कि हम भगवान् के कितने पास हैं।

ब्रज–संस्कृति 'सहज स्वभाव'

'संस्कार' उसे कहते हैं जो जीवन–पद्धति चलाते हैं। 'संस्कृति' उसे कहते हैं – ऐसे 'संस्कार' जो जीव की हर क्रिया को चलाते हैं। जैसे – जिस परिवार में भक्ति होती है तो वहाँ भक्ति के संस्कार हैं। 'ब्रज की संस्कृति' वह है जो 'ब्रज' को चलाती है, 'ब्रज के जीवन' को चलाती है। 'ब्रज की उपासना' करने के लिए 'ब्रज की संस्कृति' को समझना बहुत जरूरी है। ब्रज की संस्कृति 'प्रेममयी' है। ब्रज की संस्कृति इतनी उदार और प्रेममयी है कि वहाँ तेरा–मेरा मिट जाता है।

आज भी हम देखते हैं कि ब्रजवासियों के द्वार पर कोई भी साधु लाल, पीले, सफेद कपड़ों वाला या किसी भी सम्प्रदाय का आ जाये तो वह खाली हाथ नहीं जाता। ब्रज का सच्चा उपासक वही है जो उनकी तरह ही उदार व प्रेम सिखाने वाला बन जाए। अगर एक शब्द में पूछा जाये कि 'ब्रज–संस्कृति' क्या है ? जैसे कि अगर एक शब्द में पूछा जाए कि गीता क्या है ? "निष्काम कर्मयोग" एक शब्द में गीता है। वैसे ही एक शब्द में 'परमेश्वर का साधारणीकरण' ब्रज–संस्कृति है। जहाँ सर्वशक्तिमान ब्रह्म भी आकर साधारण बन जाता है, जहाँ परमेश्वर ने अपना समस्त ऐश्वर्य छुपाकर किसी को ये भी नहीं पता लगने दिया कि वह परमेश्वर हैं। इसलिए अगर हमको भी ब्रज–उपासक बनना है तो हम भी साधारण बनें।

अगर हम ब्रज को समझ नहीं पाये तो उपासना क्या करेंगे ? हम (बाबाश्री) जब ब्रज में आये थे तो एक बम्बई से आदमी आये, वह हमको पहिनने के लिए एक बढ़िया मखमल का शॉल दे गये। हम उसे पहनकर भिक्षा (मधुकरी) माँगने चले गये। जहाँ–जहाँ माँगने जायें, वहीं ब्रजवासी कहें कि बाबा ये तो बहुत बढ़िया है, इसे हमें दे दो। दो–चार बार सुना, फिर उतारकर एक गरीब की बेटी की शादी थी, उसे दे दिया। बाद में ये सब हमने बाबा को जाकर बताया। बाबा बोले कि ये तो स्वयं सोचना चाहिए कि तुम भिक्षा माँगने गये हो। देने वाले की तो धोती फटी है और तुम बढ़िया मखमल पहनकर माँगते हो, तुमको खुद विचार करना चाहिए।

'ब्रज–संस्कृति' का प्रभाव केवल जीव पर ही नहीं पड़ता अपितु जड़ व चेतन पर भी पड़ता है। ब्रज–संस्कृति में इतना प्रेम था कि यहाँ शेर और हिरन एक साथ खेलते थे। परस्पर विरोधी जीव भी एक साथ प्रेम से रहते थे, किसी में भी राग–द्वेष नहीं था; स्वयं श्यामसुंदर कहते हैं –

नृत्यन्त्यमी शिखिन ..... सतां निसर्ग: ॥

(श्रीभागवतजी १०/१५/७)

"देखो जब भी हम यहाँ पर आते हैं तो यहाँ मयूर नाचने लग जाते हैं, हिरनियाँ प्रेम दिखाने लग जाती हैं, कोयलें मीठा–मीठा गीत गाने लग जाती हैं।" अर्थात् 'ब्रज की संस्कृति' इतनी प्रेममयी है कि पशु–पक्षी भी प्रेम से स्वागत करने लग जाते हैं। अगर किसी और जगह पर जाओ तो चिड़ियाँ भाग जाती हैं, कोयलें भाग जाती हैं, मयूर भाग जाते हैं। गोपालजी बोले कि हम जंगल में आये हैं, इनके घर में आये हैं इसलिए ये सब हमारा स्वागत कर रहे हैं।"

'ब्रज–संस्कृति' केवल प्रेममयी है, उसमें जरा–सी भी बनावट नहीं है, जरा–सा भी दिखावा नहीं है। हमने अपने सामने ऐसे–ऐसे ब्रजवासी देखे हैं जिनके एक पाँव में जूता है और चले जा रहे हैं। अगर पूछा कि ये क्या बाबा ! दूसरा नहीं है क्या ?" बोले – "अरे ! एक तो है ना।"

ब्रज–भाव उसे ही कहते है जहाँ ऐश्वर्य लीन हो जाता है। जब तक मन में हिचक है तब तक ब्रज–भाव नहीं समझा जा सकता। जब कोई व्यक्ति सोचता है कि ये भगवान् हैं तो उसके मन में हिचक, संकोच, भय रहता है। जैसे – जब अर्जुन को श्रीकृष्ण ने विराट् रूप दिखाया तो अर्जुन बोले कि आपका रूप देखकर हमें पता नहीं चल रहा है कि पूरब किधर है और पश्चिम किधर है ? और ना ही हमें सुख मिल रहा है। आप प्रसन्न हो

जाओ और आप अपने इस ऐश्वर्य रूप को ढक लो, इसे हटा लो।

अदृष्टपूर्वं हृषितो.....जगन्निवास ॥

(श्रीगीताजी ११/४५)

"मैंने आपका ऐसा रूप कभी भी नहीं देखा। हमारा मन भय से काँप रहा है, मुझे अपना वह ही पहला रूप दिखा दो।" भगवान् हँस गये। सबसे मीठा रूप भगवान् का ऐसा ही है। संसार में जहाँ–जहाँ भी जाओ, श्यामसुन्दर को ब्रह्म, पुरुषोत्तम कहकर और हाथों को जोड़कर स्तुति करते हैं। ब्रज के बाहर कहीं भी जाओ तो बोलते हैं कि '**भगवान् की जय**' लेकिन ब्रज में ऐसा नहीं बोलते। ब्रज में कहेंगे कि **'बोल नन्द के लाला की जय।'** भगवान् की जय नहीं, सीधे–सीधे बाप का नाम लेते हैं। जो गाली प्रेम से दी जाती है वह प्रेम बढ़ाती है; इसीलिए ये प्रेम भरी गाली 'भगवान्' को प्रिय लगती है। भगवान् स्वयं 'भक्तों' के आधीन होकर के भक्तों की गाली पसंद करते हैं। भक्तजन जब श्यामसुंदर को कुछ सुनाते हैं तो वह सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं, जिसमें कोई बनावट नहीं है, जिसमें कोई स्तुति नहीं है, ये है ब्रज का प्रेम; जहाँ पर ये सब चीजें हैं, वहाँ पर प्रेम नहीं है। जैसा प्रेम 'ब्रज' में है वैसा प्रेम 'ऐश्वर्य' में नहीं है। जहाँ ये भगवान् हैं और हम जीव हैं, ये फर्क मिट जाता है; उसे 'प्रेम' कहते हैं। प्रेम में दोनों समान हो जाते हैं, ये प्रेम की शक्ति है।

एवं संदर्शिताह्यंग.....सेश्वरं वशे ॥

(श्रीभागवतजी १०/९/१९)

'प्रेम की शक्ति' क्या है ? 'प्रेम' वह शक्ति है जो दोनों को एक बराबरी पर ला देती है। अगर राजा का भी लड़का है तो उसे दूसरों से खेलते समय उनके बराबर बनना पड़ेगा, वैसा ही बनना पड़ेगा, सारी क्रियाएँ बराबर करनी पड़ेंगी, उसके बिना खेल नहीं चलेगा। परमात्मा भी भक्तों से लीला तभी करता है जब परमात्मापन को छोड़ देता है। 'भक्त व भगवान्' दोनों एक ही स्तर पर आ जाते हैं, उसे 'प्रेम' कहते हैं। जब किसी भी भक्त के अन्दर प्रेम की लहर आती है तो उस लहर में वह भूल जाता है कि ये भगवान् हैं; तब समझ लो कि प्रेम शुरू हो गया है।

कहीं मान प्रतिष्ठा मिले ना मिले,
अपमान गले सों बँधाना पड़े।
जल भोजन की परवाह नहीं,
करके व्रत जन्म गँवाना पड़े।
अभिलाषा नहीं सुख की कुछ भी,
दुःख नित्य नवीन उठाना पड़े।
ब्रज भूमि के बाहर किन्तु प्रभो!,
हमको कभी भूल न जाना पड़े ॥

ब्रज में तो परमेश्वर भी गाली खाता है। इसी का नाम ब्रज उपासना है। ब्रज उपासक बनना है तो सम्मान की भूख नहीं रखनी चाहिए, गँवार बन जाओ। किसी ने अपमान कर दिया तो हँस जाओ। जो गँवार नही बना, उसे 'ब्रजरस' नहीं मिलेगा। अरे ! ब्रज में जब 'भगवान्' ने अपना 'भगवान्–पना' छोड़ दिया तो फिर हम लोग क्या चीज हैं ? यहाँ आकर के भी जो सम्मान सोचता है, उसे ब्रजरस नहीं मिलेगा। यहाँ तो अपमान सहने के लिए ही आओ। 'ब्रज' में इसीलिए आओ कि ब्रजबासी हमको गाली दें। **तजि देह को गेह को नेह सबै,**
बसिये सुख सों चल कुँज गली ॥

ये सोचकर चलो कुँज गली। घर को, सबको (अहंता–ममता की आसक्ति) छोड़कर चलो वहाँ। क्यों ? वहाँ क्या मिलेगा ? वही मिलेगा जो अब तक नहीं मिला। वहाँ नित्य 'कृष्णरस–राधारस' लुटता है, ये कहीं बाहर नहीं मिलेगा; मान–सम्मान से नहीं मिलेगा। बाहर तो चौरासी लाख योनियाँ मिलेंगी। तुम मूर्ख हो जो सम्मान चाहते हो।

'ब्रज की मिट्टी' को रजरानी कहते हैं। क्यों ? उसका कारण है – गंगाजी तो एक बार श्रीकृष्ण के चरणों के धोवन से प्रगट हुई थीं। यहाँ (ब्रज) की रज को तो श्रीकृष्ण रोज चाटते हैं, खाते हैं। मैया 'कन्हैया' से कहती है कि तू यहाँ की मिट्टी क्यों खाता है ?" तो वे बोले –

ऐसो स्वाद नहीं माखन में,
जो रस है ब्रज रज चाखन में ॥

ब्रज में 'भगवान्' नंगे पाँव चलते थे। तभी गोपियों ने कहा था – इतना लक्ष्मीजी के सुन्दर–सुन्दर कोमल हाथों से पैर दबवाने में उनको आनंद नही मिला, जितना ब्रज के काँटों में मिला। जितना ब्रज के कंकणों में मिला।" ये हालत भगवान् की है। फिर हम जैसे जो लोग हैं, वे न जाने अपने मन में क्या बनते हैं ?

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः... क्रीडामनुजबालकः ॥ (श्रीभागवतजी १०/८/३६)

अरे, यहाँ तो भगवान् ने तक अपनी भगवत्ता छोड़ दी, फिर प्रेम मिला। सम्मान में मरते जाओ तो प्रेम आदि कुछ नही मिलेगा, सिर्फ ८४ लाख योनियाँ ही मिलेंगी।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं.....धीर्भवदायुषां नः ॥ (श्रीभागवतजी १०/३१/१९)

गोपियाँ बोलीं कि "ये वही कृष्ण हैं, जिनके चरणों को लक्ष्मीजी धीरे–धीरे दिन–रात सहलाती हैं। क्यों ? क्योंकि हमारे हाथ तो कठोर हैं और 'प्रभु के चरण' कोमल हैं। लक्ष्मीजी जैसा उनके चरणों का लालन करती हैं और जैसा प्यार करती हैं वैसा कोई भी नहीं कर सकता पर ब्रज में भगवान् काँटों में दौड़ते हैं, ब्रज में गँवारों के साथ भगवान् भी गँवार बन गये हैं।" इस ब्रज में आकर जो गँवार नहीं बना, वह 'ब्रजभाव' नहीं जान पाया। सब लोग पैसा चाहते हैं, मन्दिर वाला पैसा चाहता है, पुजारी पैसा चाहता है, चोर पैसा चाहता है, कथा करने वाला पैसा चाहता है, कीर्तन करने वाला पैसा चाहता है, पापी पैसा चाहता है; सब पैसा चाहते हैं। पर वह लक्ष्मी सब छोड़कर क्या चाहती हैं ?

जयति तेऽधिकं.....विचिन्वते ॥

(श्रीभागवतजी १०/३१/१)

वे तो वृन्दावनविहारीलाल के चरणकमलों की रज चाहती हैं। इसका एक अर्थ ये भी है कि जो पैसा चाहता है, उसको ब्रजरस नहीं मिलेगा।

नेमं विरिञ्चो.....विमुक्तिदात् ॥(श्रीभागवतजी १०/९/२०)

जब महालक्ष्मी को नहीं मिला, तो जो हम जैसे मक्खी–मच्छर क्या चीज हैं ? जब तक तुम्हारे मन में पैसे की तृष्णा है, तब तक ब्रजरस नहीं मिलेगा। ये बात समझ लो कि कोई भी गोपी 'भगवान्' के ऐश्वर्य रूप पर मोहित नहीं हुई। ब्रजमण्डलान्तर्गत 'पैंठे' गाँव में 'भगवान्' चतुर्भुज रूप से प्रगट हुए तो गोपियाँ डर गयीं और उनसे बोली भी नहीं। गोपियाँ प्रभु को छोड़ के चली गयीं। ब्रज में प्रेम का विकास है। यहाँ कृष्ण वनों में घूम रहे हैं, बिना बुलाये सब जगह चले जाते हैं। घर–घर चोरी करते हैं, उनमें कोई भी बड़प्पन नहीं है; गायों की सेवा करते हैं, ग्वालबालों की सेवा करते हैं, गोपियों की सेवा करते हैं; प्रेम है यहाँ। ये वही ब्रज है परन्तु हमें इसी ब्रज में वह रूप दिखाई नहीं देता जिसका वर्णन महात्माओं ने किया है –

धनि–धनि वृन्दावन के रूख ।
रसिकन पारिजात यह दीखत,
विमुखन ढाक पिलूक ॥

हमें तो हर जगह गंदगी दिखाई देती है, ब्रजवासियों में भी विकार दिखाई देते हैं। तो ये हमारे भाव कैसे पकें ? भाव में एकरसता कैसे आये ? 'एकरसता' माने एक स्वभाव। फिर जीव हिलता नहीं, डिगता नहीं। कच्चे साधक तो करोड़ों हुए पर 'परमात्मा तक पहुँचना' वह एक अलग बात है। भगवान् से मिलने की ये बड़ी टेढ़ी–मेढ़ी राह है। कैसा रास्ता है ? जैसे दुनिया में हर रास्ते का हिसाब मालूम होता है। मानलो बॉम्बे (मुम्बई) जाना है तो बोले इतने समय में पहुँच जाओगे परन्तु इस प्रेम के रास्ते पर न शुरुआत है और न बीच है और न ही अंत है। कौन से स्टेशन से जाना है ? कितनी दूर है ? कितना बाकी है ? कुछ पता नहीं। हम लोग ऐसे रास्ते पर चल रहे हैं और अन्धे हैं।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

योगी बहुत से होते हैं, जैसे – ज्ञानयोगी, कर्मयोगी आदि किन्तु सबसे बड़ा योगी तो मेरा भक्त ही है, सम्पूर्ण योगियों में जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

☀ ब्रजरज–आश्रय से श्रीकृष्णप्रेम सहज ☀

जिस पाप व कष्ट को अन्य साधन नष्ट नहीं करते, उसे धाम नष्ट कर देता है। श्रीपाद प्रबोधानंदजी ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि कोई पतित, नीच या साधनहीन भी है और यदि वह भी निष्ठा से धाम का आश्रय ले ले तो वह अवश्य धामी से मिल जायेगा। किसी वस्तु का सतत् सेवन ही सिद्धि प्रदान करा सकता है। सतत् सेवन केवल धाम का ही सम्भव है। अन्य साधनों में बाधायें उपस्थित होती रहती हैं। धामनिष्ठा बड़ी विचित्र होती है। धाम में तो सोना भी भजन है।

जिसके पास धन है तो वह धन देगा, 'भोगी' भोग देगा, 'ज्ञानी' ज्ञान देगा, 'भक्त' भक्ति देगा, धामनिष्ठा वाला धाम– निष्ठा देगा, हर जीव संसार को कुछ न कुछ देता है परन्तु देता उसी वस्तु को है जो उसके पास होती है। प्रकृति के अनुसार ही 'जीव' जीव का संग करता है, 'कामी' कामी का संग करता है, 'लोभी' लोभी का संग करता है, तुम जैसा संग करोगे वैसी ही तुम्हारी बुद्धि या प्रकृति बन जायेगी। इसीलिए अपना संग सोच समझ कर करो। श्रद्धा वाले का संग करने से श्रद्धा बढ़ेगी। तभी तो जीव को जितना एक भक्त का संग पवित्र करता है, उतना गंगा भी पवित्र नहीं कर सकती। धामनिष्ठा के लिए निष्ठावान् का ही संग करें। निष्ठावान् पुरुष का सीधा अंतरात्मा पर संक्रमण होता है। जो निष्ठा लाखों जन्मों के साधनों से नहीं मिलती, वह सहज में ही निष्ठावान् के संग से मिल जाती है। ब्रजधाम दिव्य है, ब्रजभूमि के रजकणों को बैकुण्ठ से भी ऊँचा माना गया है। यहाँ की भूमि का कण–कण श्रीराधाकृष्ण के प्रेमचिह्नों से मंडित है।

'सत्, रज, तम' इन तीनों गुणों से अतीत जो व्यापक परब्रह्म है, वही ब्रज है। यह सच्चिदानन्द स्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवनमुक्त पुरुष इस व्यापक परब्रह्म में निवास करते हैं।

गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं ब्रज उच्यते।
सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम्॥

(श्रीस्कन्दपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य – १/२०)

परमब्रह्म स्वरूप ब्रजधाम श्रीकृष्ण की नित्य निवास स्थली है। श्रीकृष्ण आत्माराम सच्चिदानन्दमय होकर ब्रज में भक्तों के लिए सहज में ही सुलभ हो जाते हैं। श्रीराधा 'भगवान्' की आह्लादिनी शक्ति हैं; लावण्य, माधुर्य तथा प्रेम की साक्षात् मूर्ति श्रीराधा के साथ रमण करने के कारण ही श्यामसुन्दर आत्माराम कहलाते हैं। ब्रज का कण–कण श्रीयुगलसरकार के चरणों से अंकित व उनकी रसमाधुरी से सिंचित है। यहाँ का प्रत्येक कण मुक्ति को भी मुक्त करने वाला है।

मुक्ति कहै गोपाल सों, मेरी मुक्ति बताय।
ब्रज–रज उड़ि मस्तक लगै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय॥

ब्रजधाम के कण–कण में श्रीकृष्ण के स्वरूप का दर्शन पाकर स्वयं ब्रह्माजी माया से मोहित हुए थे और भाव–विभोर होकर अपने नयनाश्रुओं से यहाँ के रज कणों का अभिषेक करने के लिए बाध्य हुए थे। ज्ञानी 'उद्धवजी' ने भी इस ब्रजरज में 'लता बनना' ही अपना परम सौभाग्य माना था –

आसामहो चरणरेणु.....श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(श्रीभागवतजी १०/४७/६१)

स्वयं विश्वामित्र, नारद, शुकदेव, गौतम, परशुराम आदि मुनियों ने इसी ब्रज चौरासी को अपनी तपस्या स्थली बनाया। आज भी करोड़ों भक्तजन यहाँ आकर अपनी आराध्या ब्रज भूमि के दर्शन कर अपने को धन्य समझते हैं जो कि उनकी भक्ति की आस्था का केंद्र है।

धाम की महिमा को जब ब्रह्मा आदि भी नहीं जान पाते हैं तो उसके बारे में हम क्या बोलें ? परन्तु शिष्टाचार के नाते कुछ कह रहे हैं। पहले हम जानते तो कुछ भी नहीं थे, ऐसे ही भाषण किया करते थे। कभी जयपुर जाते और कभी अलवर जाते। उस समय हम जयपुर व

अलवर भाषण करने गये थे और बड़े आश्चर्य की बात है कि अलवर में एक ही दिन में कार में घूम–घूमके रात के दो बजे तक ३३ जगह हमारे भाषण हुए थे, वह हमारा आखिरी दौरा था। ज्यादा तो हमें याद नहीं पर एक आखिरी घर में सत्संग हो रहा था तो वहाँ हमें याद है कि हमसे तेरह प्रश्न पूछे गए थे। तेरहवाँ प्रश्न था कि ईश्वर प्राप्ति कैसे हो ? हम इसे एक अनुभव तो नहीं कह सकते लेकिन जब हम इसका उत्तर देने लगे तो कुछ ऐसी घटना घटी कि हमारी वाणी रुक गयी। वाणी इसलिए नहीं रुकी कि हम बीमार थे। हृदय में एक बात खटकी कि क्या तुम को भगवान् मिल गये हैं, जो तुम बोल रहे हो। बड़ी अजीब घटना घटी और हम थोड़ी बेचैनी–सी महसूस करने लगे। वहाँ से हम निकलकर अपने कमरे में चले गये। जिसके घर में ठहरे थे, उनसे हमने कहा कि माथुरजी आपकी गाड़ी कहाँ है ? तो माथुरजी बोले गाड़ी तो आपके लिए तैयार खड़ी है। हमने पूछा कि क्या तुम अभी हमें ब्रज के पास छोड़ सकते हो ? वे बोले ऐसा कैसे हो सकता है ? कल आपका कार्यक्रम है। हमने कहा कि हम तो बरसाने (मानमन्दिर) जायेंगे, हमें कुछ बेचैनी–सी हो रही है। तुम नहीं छोड़ोगे तो हम पैदल ही चले जायेंगे। जो हमारे साथ महात्मा रहते थे, वह भी हमारे साथ गये हुए थे और वे तो बड़े नाराज हुए और कहने लगे कि क्या तुम पागल हो गये हो ? हमने कहा कि हाँ हम कुछ पागल से ही हो गये हैं। फिर उनकी गाड़ी में जब हम डीग के पास आये तो हमने उनसे कहा कि आप अपनी गाड़ी वापस ले जाओ, अब 'ब्रज' आ गया है लेकिन वह हमें जबर्दस्ती मानमंदिर तक छोड़ गये।

अगले दिन हम छत पर बैठे थे और एक महात्मा को अपने प्रोग्राम (कार्यक्रम) का कागज दिखा रहे थे। इतने में हमारे बाबा (श्रीप्रियाशरणजीमहाराज) यूँ ही टहलते–टहलते मन्दिर में आ गये। बाबा से हमारा यह नया–नया परिचय था। धाम की महिमा हमारे जीवन में यहाँ से शुरू होती है। उन्होंने कहा कि अरे भाई, क्या हो रहा है ? हमने कहा – "बाबा ! हम अभी जयपुर से अलवर तक प्रोग्राम करके आये हैं, वहाँ से ये चिट्ठियाँ आयीं हैं, इनको पढ़ रहे हैं।" उन्होंने हमारी तरफ देखा और बोले – "भड़ुआ ! ये चिट्ठियाँ ही पढ़ोगे, घर से तुम भजन करने निकले हो या यही पापड़ बेलने ?" उनके ये ही शब्द थे। हमें बात कुछ अच्छी लगी और फिर हम उनके सत्संग में जाने लगे। उन्होंने हमसे कहा कि देखो जब घर से निकले हो तो धाम का आश्रय लो। वहाँ से हमारा जीवन बदला। धाम के बारे में बहुत–सी बातों को पढ़ने लग गये और हमने सोच लिया कि अब हमें यहाँ से नहीं जाना हैं। हम जब ब्रज में आये थे तो सबसे पहले हमने ये ही पाठ पढ़ा था।

भगवान् का 'नाम, रूप, गुण, लीला, धाम व धामी' ये सब एक ही हैं किन्तु रसिक पुरुषों ने इनमें से धाम को सबसे सहज और सरल बताया है। नाम सरल तो है पर सोते समय ये स्थिति तो नहीं हो सकती कि नाम अखण्ड चलता रहे, इसी तरह से रूप–चिंतन भी अखण्ड नहीं हो सकता है और लीलागुणगान भी अखण्ड नहीं हो सकता है और जनसेवा भी अखण्ड नहीं चल सकती है। इसीलिए महात्माओं ने कहा है कि धाम को पकड़ लो। धाम में अखण्ड निवास कर लो क्योंकि सोओगे तो भी धाम में रहोगे और जागोगे तो भी धाम में ही रहोगे। वृन्दावन महिमामृत में यहाँ तक लिखा है –

दूरे चैतन्य चरणा.....विना वृन्दावने रतिम् ॥

ऐसे आचार्य तो चले गये जिनकी वायु से ही प्रेम की प्राप्ति होती थी। न चैतन्यमहाप्रभुजी रहे, न हरिवंशजीमहाराज रहे और न महाप्रभु हरिदासजी रहे, तो कृष्णप्रेम की प्राप्ति कैसे हो ? तो शतककार कहते हैं कि वृन्दावन की रज का आश्रय कर लो, धाम का आश्रय कर लो, तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा। शिवपुराण में भी आता है कि अगर कुछ नहीं आता है तो धाम में आकर मर ही जाओ। रसिकों ने भी इस बात को कहा है – **"वृन्दावन में मंजुल मरिबो।**

☀ भवरोग की औषधि 'श्रीभगवन्नाम' ☀

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू ।
राम नाम अवलंबन एकू ॥

कलियुग में केवल श्रीकृष्ण–कीर्तन से ही अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। कलियुग को तुम बाधक मत मानो, कलियुग तो भक्ति में हमारा सहायक है।

यत्फलं नास्ति ....केशव कीर्तनात् ॥

(श्रीपद्मपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य – १/६८)

जो फल तपस्या, योग एवं समाधि से भी नहीं मिलता, कलियुग में वही फल 'भगवान् के कीर्तन' से ही मिल जाता है। सूत जी, शौनकादिक ऋषियों ने कलियुग का महत्व बताते हुए कहा है –

नानुद्वेष्टि कलिं.....कृतानि यत् ॥

(श्रीभागवतजी १/१८/७)

कलियुग का एक विशेष गुण यह है कि इसमें मानसिक पुण्य तो हो जाते हैं लेकिन पाप नहीं होते; इसीलिए राजा परीक्षित कलियुग से द्वेष नहीं रखते थे। रामायण में भी आता है – **कलियुग जोग न जग्य न ग्याना ।**

एक अधार राम गुन गाना ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा ।
मानस पुण्य होहिं नहिं पापा ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – १०३)

कलियुग में न तो योग है, न यज्ञ है और न ज्ञान ही है, केवल भगवान् का नाम ही एकमात्र आधार है। इसमें मानसिक पुण्य हैं लेकिन पाप नहीं हैं। महाप्रभु चैतन्यदेव ने भी यही कहा है कि भगवान् के नाम के बिना अन्य किसी साधन से कलियुग में मनुष्य कि गति संभव नहीं है; इसलिए वह सतत् कृष्ण नाम को ही जपते थे।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

'कलियुग' भगवान् की ही शक्ति है जो केवल भगवान् से विमुख जीव पर ही अपना प्रभाव दिखाता है। भक्तों ने तो हर युग में काल को जीता है। कलियुग में भगवद्–गुणों का बार–बार चिन्तन करो, बार–बार चिन्तन करने से ही प्रभु में प्रेम व भक्ति होगी।

श्रुत्वा गुणान् .....चित्तमपत्रपं मे ॥

(श्रीभागवतजी १०/५२/३७)

रुक्मणीजी ने श्रीकृष्णगुणों को सुना और उनका चिन्तन किया, ऐसा करने से उन्हें श्रीकृष्ण में प्रेम हुआ और उन्हें श्रीकृष्ण मिले। कृष्णगुण–श्रवण समस्त तीर्थों का सार है। भगवान् के गुण मानस पापों या तापों को जला देते हैं और फल में प्रभु से मिला देते हैं। प्रेम–प्राप्ति व प्रभु– प्राप्ति का सहज मार्ग प्रभु के गुणों का गान ही है।

एक दवा तो ऐसी होती है जो केवल रोग को समाप्त करती है और एक दवा ऐसी होती है जो रोग को भी नष्ट करती है और स्वस्थ भी करती है।

नामसंकीर्तनं यस्य ..... हरिं परम् ॥

(श्रीभागवतजी १२/१३/२३)

भगवन्नाम इसी दवा का नाम है। हर क्षण प्रभु का नाम लेते रहो। ये पाप भी नाश कर देगा और मंगल भी करेगा। भगवान् को देख करके प्यार नहीं किया जाता, भगवान् को सुनकर प्रेम किया जाता है।

त्वं भावयोग.....प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥

(श्रीभागवतजी ३/९/११)

इस दुनियाँ में तो आँखों से देखा जाता है परन्तु उस दुनिया में कानों से देखा जाता है। श्यामसुन्दर की जो प्रेम की डगरिया है वह आँखों से नहीं दिखायी देती बल्कि सुनकर उस रास्ते पर चला जाता है, सुनना सीखो, हर क्षण उनके गुणों को सुनो, अपने–आप तुमको उनका रास्ता मिल जायेगा। रास्ता ही नहीं वे खुद ही आकर तुम्हारे पास बैठ जायेंगे। प्रभु ने कहा था कि "मैं बैकुण्ठ में नहीं रहता, जहाँ हमारे भक्त लोग बड़े स्नेह से गाते हैं, बस मैं तो वहीं पड़ा रहता हूँ।" सब के सब क्लेश केवल एक श्रवणमात्र से ही नष्ट हो जाते हैं और भक्ति की सहज में ही प्राप्ति हो जाती है। हर क्षण कृष्णगुणगान,

कथा–कीर्तन का श्रवण करते रहो। परन्तु कैसे ? श्रवण करो तो परीक्षितजी की तरह। जिन्होंने सात दिन ऐसी लगन से कथा सुनी कि वह खाना–पीना ही भूल गये। जब स्वयं शुकदेव जी ने कहा कि "कुछ ले लो।" तो परीक्षितजी बोले कि "हमें भोजन तो दूर पानी पीना भी बाधा लग रहा है।" ऐसी निष्ठा चाहिए सुनने में। भाव से, अभाव से या कुभाव से, तुम किसी भी तरह प्रभु का नाम लोगे तो भी प्रभु का नाम तुम्हारे सब पाप जला देगा। भगवान् को गाली देने के लिए भी अगर तुम उनका नाम लोगे या किसी विषमता के कारण प्रभु का नाम लोगे तब भी प्रभु तुम पर दया करेंगे। **साङ्केत्यं पारिहास्यं.....अघहरं विदुः ॥**

(श्रीभागवतजी ६/२/१४)

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

जब मेघनाद मरते समय रामजी को गाली देकर मरा तो हनुमानजी कहते हैं कि धन्य है इसकी माँ जो ये मरते समय प्रभु का नाम तो ले रहा है। जबकि मेघनाद कुभाव से प्रभु का नाम ले रहा था, रावण प्रभु का नाम खीज या अनख से लेता था। जब प्रभु का नाम किसी भी तरह से लेने से ही कल्याण हो जाता है फिर प्रभु का नाम आप भाव से लोगे तो कल्याण कैसे नहीं होगा? जीव के लिए भगवन्नाम आवश्यक है। भगवन्नाम के माध्यम से प्रभु हमारे हृदय में आते हैं और उसे पवित्र करते हैं। भगवन्नाम तो मुर्दे को भी पवित्र बना देता है तभी तो मृत्यु के समय 'राम नाम सत्य' बोला जाता है।

अगर किसी कारण से स्नानादि नहीं होता तो कोई बात नहीं है। स्नान तो बाहरी स्थूल देह को पवित्र करता है परन्तु भगवन्नाम तो अन्तःकरण को भी पवित्र बना देता है। जो सामर्थ्य भगवान् में है, उससे कहीं अधिक शक्ति 'भगवन्नाम, कथा–कीर्तन' में है। यहाँ तक कहा गया है कि 'भगवान् के नाम' में प्रभु से भी अधिक शक्ति है। **निरगुन तें एहि भांति बड़ नाम प्रभाउ अपार। कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥** अतः जरा–सा भी काल का, कष्ट का या दुःख का भय मत करो। केवल प्रभु का नाम स्मरण करते रहो। हम लोग भगवान् को न स्मरण करके दुःख का ही स्मरण करते रहते हैं। चित्त में जब तक भगवान् का नाम नहीं है, तब तक ही जीव को भय लगता है। 'भय' का तात्पर्य ही ये है कि 'प्रभु' चित्त से दूर हैं। सिर्फ 'आराधना' ही जीव को भय से रहित बनाती है। अतः प्रभु का हर क्षण स्मरण करो। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि जब बुखार होता है तो खीर अच्छी नहीं लगती। वैसे ही मनुष्य के पापों के कारण ये अध्यात्मिक चीजें उसे अच्छी नहीं लगतीं। ये पाप जीव को प्रभु की शरणागति में नहीं आने देते।

तुलसी पिछले पाप ते, हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के अंश ते, भोजन की रुचि जाय॥

एक उदाहरण देते हैं कि जब हनुमानजी ने अशोक वाटिका में जानकी जी को देखा तो देखते ही समझ गये कि जानकीजी के प्राण रामजी के विरह में क्यों नहीं छूटे।

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥

(श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड – ३०)

जानकीजी को भी दशरथजी की तरह श्रीरामजी से बिछुड़ने का उत्कट विरह था लेकिन उनका अनावर्त (अखण्ड) 'भगवन्नाम' चल रहा था। दूसरी बात 'जनकनन्दिनीजी' का ध्यान सिर्फ श्रीरामजी पर ही था, ये ध्यान की कपाट है जो प्राणों को निकलने नहीं देता। इस तरह का ध्यान तो हम लोग नहीं कर सकते फिर भी 'भगवन्नाम' तो सुनते हैं, 'कथा' तो सुनते हैं। तीसरी बात ये है कि सीताजी ने आँखों को अपने चरणों में लगा रखा था, दूसरा कोई दृश्य नहीं देखती थीं। इन तीन बातों के ही कारण सीताजी के प्राण नहीं निकले। प्राणों को छोड़ना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है – भगवन्नाम ग्रहण, बड़ी बात है – भगवान् का ध्यान, बड़ी बात है – भगवान् के चरणों में चित्त वृत्ति लगाना।

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्। महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ।(श्रीभागवतजी ६/३/३१)

भगवान् का संकीर्तन सारे विश्व का मंगल करता है, इससे बड़ी कोई औषधि नहीं है

☀ श्रीब्रजभक्ति के सूर्य 'बाबाश्री' ☀

'श्रीभक्तिमार्ग' कृपा का मार्ग है। बिना कृपा के चलना तो दूर, इस रास्ते पर कोई पाँव भी नहीं रख सकता। **अति हरि कृपा जाहि पर होई।**
पाँव देइ एहि मारग सोई॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – १२९)

चलना और चलने के बाद मंजिलें पाना, जैसे हम लोग यदि मानमन्दिर से श्रीजी के मन्दिर जायेंगे तो पहली मंजिल है जयपुर मन्दिर, उसके बाद – नागरीदासजी की समाधि, नारायण भट्टजी के शिष्य श्रीनारायणदासजी की समाधि आदि बीच की मंजिलें हैं और सबसे अन्त में है –श्रीजी मन्दिर, इस प्रकार देखा जाए तो चलना तो अलग बात है, मंजिल पाना भी अलग बात है, इस रास्ते पर तो पाँव देना ही कठिन है, कृपा वाला ही पाँव रख सकता है।

उपरोक्त चौपाई को हम पचासों बार कह चुके हैं किन्तु आज यह चौपाई जितनी गम्भीरता से हमें कुछ समझ में आई, वैसी आज तक कभी नहीं समझ में आई थी। बिना कृपा के कोई यहाँ पाँव ही नहीं दे सकता, ये हमें समझ में नहीं आता था। इसे हम साधारण बात समझते थे लेकिन गम्भीरता से नहीं समझते थे। आज कुछ बातें यों समझ में आयीं कि मानमन्दिर में बड़े अच्छे–अच्छे सेवक आये, जो अपनी हथेली पर प्राण रखते थे। जब चाहे उनके प्राण ले लो, वे इसके लिए सदा तैयार रहते थे क्योंकि इस 'मानमन्दिर' में आरम्भ से ही लड़ाइयाँ होती रहीं, ब्रज की रक्षा हेतु संघर्ष होता रहा। गह्वरवन को बचाने के लिए भी संघर्ष किया गया, बहुत–सी लड़ाइयाँ लड़ी गयीं।

सात बार तो मानमन्दिर के निकटवर्ती ग्रामवासी हमें पीटने के लिए मानमन्दिर पर आये। दो–तीन बार, चिकसौली के लोग, दो–तीन बार मानपुर के ग्रामीण और एक बार बरसानावासी हमें पीटने के लिए आये किन्तु वे असफल रहे, हमें कभी भी कोई हानि नहीं हुई। उस समय भी कुछ लोग हमारे साथ थे; बड़े–बड़े लोग यहाँ आये, जो सदा प्राण देने के लिए तैयार रहते थे।

पहले गह्वर वन में डभारा और ऊँचागाँव से ऊँट चरने के लिए आते थे, वे ऊँट सारा वन चर जाते थे। उस समय मान मन्दिर पर जो बच्चे रहते थे, वे गह्वर वन की रक्षा हेतु जान देने के लिए तैयार रहते थे। उन बच्चों का मान मन्दिर पर बहुत बड़ा संगठन था। उनका ऐसा प्रबल शासन था कि उनके भय के कारण गह्वर वन में कोई ऊँट चराने के लिए नहीं आ सकता था। वे बच्चे बहुत वीर थे किन्तु अब तो उन बच्चों में केवल राधाकान्तजी (भैयाजी) ही बचे हैं। इनको याद होगा, उस समय उन बालकों के द्वारा अपनी अँगुली काटकर खून से हस्ताक्षर किये जाते थे क्योंकि हमने बचपन में सुभाष चन्द्र बोस की जीवनी पढ़ी थी। सुभाष बाबू की सेना में ऐसे बच्चे थे, जो दस–दस साल के थे। वे छाती में बम का गोला बाँधकर विदेशी अंग्रेजी सेना के बड़े–बड़े टैंकों के नीचे लेट जाते थे। एक बच्चा जाता था और टैंक उड़ जाता था। ये सब कहानियाँ हमने पढ़ी थीं, जब हम बच्चे थे। इन कहानियों को पढ़ने के बाद हमने मान मन्दिर में वास करते समय ब्रजवासी बच्चों को पढ़ाना शुरू किया और उन्हें ऐसे–ऐसे गीत गवाते थे, जिन्हें सुनकर खून खौलने लग जाता था। खड़े–खड़े ही बच्चे जोश में भर जाते थे और अपने खून से हस्ताक्षर करते थे तथा बिना आवाज दिए अर्थात् बिना आदेश दिए ही दौड़ जाते थे एवं गह्वरवन में पशुओं को चराने वालों को, वन को नष्ट करने वालों को मारकर भगाते थे। इसलिए लोगों से लड़ाइयाँ भी होती थीं और उन्होंने हमको मान मन्दिर से निकालने की भी योजना बनायी। एक बार हमको मान मन्दिर से बहिष्कृत करने के लिए ग्यारह गाँवों की पंचायत भी हुई थी लेकिन फिर भी गह्वर वन की रक्षा के लिए लड़ाई बन्द नहीं हुई। उस समय कोई गह्वर वन में घुस नहीं सकता था। बड़ी–बड़ी कहानियाँ हैं, इसलिए यह बात याद आई। उस ज़माने के लड़के

अब नहीं रहे, पता नहीं, क्यों नहीं रहे। इसका कारण यही था कि भगवान् की कृपा नहीं हुई, नहीं तो वे ऐसे वीर बच्चे थे, उनमें से एक लड़का अभी कुछ दिनों पहले मरा है, अब तो वह बच्चा नहीं बल्कि बूढ़ा होकर मरा है। उस समय मानपुर के लोग हमसे बहुत चिढ़ते थे। सारा गाँव हमारे विरोध में था क्योंकि हम गह्वरवन को बचाना चाहते थे। यहाँ चिकसौली और मानपुर वालों के गोत (अनधिकृत कब्जे) बने थे। उनको हटाया गया तो सबसे वैर बन गया और इतना वैर था कि गाँव वाले कहने लगे कि किसी तरह इस बाबाजी को मार डालो। उस समय हम रात को वंशी बजाते थे। ये बहुत पुरानी बातें हैं। जब रात को हमारी वंशी बजती थी तो उसे सुनकर सब लोग कहते थे कि देखो, बाबाजी जग रहा है।

मान मन्दिर में उस समय तीनों गाँवों के सैकड़ों लड़के रहते थे और हम स्वयं उन्हें पढ़ाते थे। पढ़ाते तो कम थे, उनसे वीर रस के गीत गवाते थे। उन्हें खड़ा करके अच्छे–अच्छे गीत गवाते थे।

हिमाद्रि तुंगश्रंगसे प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वतन्त्रता समुज्ञवला स्वतन्त्रता पुकारती।
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो॥

ऐसे गीत हम उन बच्चों से गवाते थे तो जोश के कारण उनका हाथ काँपता था और स्वयं भी हम गाते थे। वे सब बच्चे ऐसे थे कि जान दे दें। भावना एक शक्ति होती है। अतः हम बच्चों के मन में भाव भरने का प्रयास करते थे। उस ज़माने के (मेरे द्वारा रचित) बहुत से गीत हैं –**तुम सुनो कहानी भारत की,**
हम फिर से आज सुनाते हैं।

सारे भारत की तीनों–चारों युगों की कहानी के गीत हम बनाते थे और बच्चों से गँवाते थे –

'थे त्रेता युग में राम हुए, पितु आज्ञा से वनवास गये।'

फिर वहाँ पर युद्ध का वर्णन आता है, फिर द्वापर युग में श्रीकृष्ण हुए। धीरे–धीरे कलियुग तक लाते हैं, पूरा इतिहास था।

इस तरह हम बच्चों से बड़े–बड़े गीत गँवाते थे, कुश्ती लड़ाते थे, लाठी चलाना सिखाते थे।

एक बार एक डाकू हमें मारने के लिए आया। लोगों ने उसे सिखाकर भेजा था। संयोग से वह नीचे आया तो यहाँ के लड़कों ने उसे घेर लिया। वह डाकू भी बड़ा पहलवान था किन्तु कुछ लड़के उसकी टांग खींचने लगे, तो कोई उसके दूसरे अंगों पर चोट करने लगे, इस तरह सब लड़कों ने मिलकर उसकी आफत कर दी। अब वह बच्चों को कैसे मार सकता था। बन्दूक की गोली तो बच्चों पर चलायी नहीं जा सकती थी। इतने अधिक बच्चे थे, उनसे पिटकर वह यहाँ से चला गया। दुबारा कभी वह गह्वर वन में नहीं आया। बच्चों ने उसे ठीक कर दिया। लोगों ने हमें बताया कि वह नामी डाकू यहाँ आया था। हमने पूछा कि फिर क्या हुआ तो लोगों ने बताया कि बच्चों ने उसे घेर लिया। दो–तीन बच्चों ने उसकी एक टांग पकड़ी, दो–तीन बच्चों ने दूसरी टांग पकड़ी, किसी ने हाथ पकड़ा, किसी ने उसकी कमर पकड़ी। इस तरह बीसों बच्चे उससे लिपट गये, अब बेचारा अकेला आदमी क्या कर सकता था। वह डाकू चला गया, उसके बाद गह्वर वन में कभी नहीं आया। हमारे जीवन में बहुत–सी घटनाएँ यहाँ (ब्रज में) हुई हैं।

जब हम घर से निकले थे तो सोच के चले थे कि हम मर चुके हैं। क्या भूख–प्यास, कुछ नहीं। उस समय हम गाते थे – **कहीं मान–प्रतिष्ठा मिले न मिले, अपमान गले सो बँधाना पड़े।**

जल–भोजन की परवाह नहीं,
करके व्रत जन्म बिताना पड़े॥
अभिलाषा नहीं सुख की कुछ भी,
दुःख नित्य नवीन उठाना पड़े।
ब्रजभूमि के बाहर किन्तु प्रभो,
हमको कभी भूल न जाना पड़े॥

जब हम मानमन्दिर पर आये थे तो उस समय भिक्षा नहीं माँगते थे। बड़ी लम्बी कहानी है, कहीं एक–दो दिन में बिना माँगे मिल जाता था तो खा लेते थे। पहनने के लिए कपड़े नहीं थे। एक बार जाड़े के मौसम में राधाकुण्ड चले गये तो किनारे सिकुड़कर बैठे हुए सारी रात काटी। सर्दी से बचने के लिए शरीर पर ओढ़ने के

लिए कुछ नहीं था। ठण्ड के कारण शरीर काँप रहा था। वे सब बातें अब कहानी बन चुकी हैं। हम कहते थे कि जिस भगवान् ने मान मन्दिर में डाकुओं से हमारी रक्षा की, वह भगवान् कहीं गया नहीं है।

दिल्ली के गोविन्दराम चोपरा और सावित्री अब नहीं हैं, मर चुके हैं। एक बार ये लोग दिल्ली से हमसे मिलने के लिए मानगढ़ आये, रात को ये लोग मानगढ़ पहुँचे तो देखा कि छत पर एक काला साँप हमारे सिर पर बैठा था। हम उस समय सो रहे थे। इन लोगों को देखकर वह सर्प भाग गया। पहले यहाँ अजगर भी रहा करते थे। उस समय मानगढ़ बड़ा भयानक स्थान था। वे सब बातें अब याद आती हैं, जो अब कहानी बन गयी हैं परन्तु उस समय जो सुख था, वह सुख अब नहीं है। गह्वर वन में जो कुआँ है, वहाँ से जल भरकर हम मान मन्दिर पर लाया करते थे। अब तो बिजली के द्वारा पानी आता है। वर्तमान में मान मन्दिर में बिजली है, पंखे लगे हैं, सुविधाएँ हैं। अब मानगढ़ ऐसा नहीं है, जैसा ६०–७० साल पहले था। अच्छे–अच्छे पक्के लोग भी यहाँ रहकर चले गये। एक ब्रजवासी बालक था जो हमारे लिए जान देने के लिए भी सदैव तैयार रहता था, इतनी अधिक उसकी हमारे प्रति श्रद्धा व निष्ठा थी। कालान्तर में वही विरोधी बन गया और ऐसा विरोधी बना कि मानगढ़ के लोगों को बहकाने लगा। सखीशरणजी बड़े महात्मा थे, उनको कोई फोड़ नहीं सका। वह लड़का सखीशरणजी के पास गया और उनसे बोला कि मानगढ़ का साथ छोड़ दो। हमने मानगढ़ के सभी दरवाजे बन्द कर दिए हैं। जितने भी लोग यहाँ आते थे, उनके पास जा–जाकर उसने मानगढ़ की बुराई की। पहले यहाँ हापुड़, बरेली और मेरठ के लोगों की बड़ी भीड़ आती थी, उन सबके पास जाकर उस लड़के ने मानगढ़ की बहुत निन्दा की और इस कारण उन सब लोगों ने यहाँ आना बन्द कर दिया। उसने मानगढ़ से ही भाषण करना सीखा था, अतः वह भाषण भी दिया करता था। जितनी भी उसमें शक्ति थी, सारी शक्ति उसने मानगढ़ के विरुद्ध लोगों को भड़काने में लगा दी। उसके कुसंग के दुष्प्रभाव से लोगों ने यहाँ आना बन्द कर दिया किन्तु सखीशरणजी के ऊपर उसके कुसंग का कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे अन्त समय तक मानगढ़ के साथ रहे और अन्तिम समय तक उन्होंने यहाँ सेवा किया।

उस लड़के ने मानगढ़ का विरोधी बनकर यहाँ के विरुद्ध बहुत बड़ा दुष्प्रचार किया लेकिन मानगढ़ टूटा नहीं। जाने क्या लीला है, लोग टूट जाते हैं। थोड़े दिन चलते हैं, फिर थोड़े दिन बाद हट जाते हैं। सारी बातें हमें याद आयीं। थोड़े में मानगढ़ का इतिहास हमने सुनाया। यहाँ बहुत से लोग आये लेकिन कुछ दिन बाद वे विरोधी बन जाते हैं। काल की गति है। कुछ दिन तक मनुष्य साथ रहता है, कुछ दिन बाद अलग हो जाता है। **– बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग (१/४/२०१४) से संकलित**

(३१/७/२०११)

प्रयाग में यमुना बहुत बड़ी है। जब बरसात के मौसम में वहाँ यमुना गंगा से टकराती है तो कई किलोमीटर दूर तक पानी भर जाता है। उस समय लोग बाढ़ का दृश्य देखने जाते हैं। एक बार हम भी वहाँ गये। यमुनाजी के पुल पर खड़े हुए तो सारा पुल बाढ़ के जल के अत्यधिक वेग से हिलता रहता है। उसी समय वहाँ एक पागल आदमी आया। लोगों को पता नहीं था कि वह पागल है। उसने एक लड़के को बाँह से पकड़कर उठाया और जिस प्रकार धोबी कपड़ा धोने के लिए पटकता है, उसी प्रकार उसने लड़के को पटक–पटककर मार डाला क्योंकि वह पागल और ताकतवर था। इसलिए यदि कोई व्यक्ति शक्तिशाली है परन्तु उसमें ज्ञान नहीं है तो शक्ति से बड़ी चीज है ज्ञान। **(६/७/२०१२)**

एक घटना विचित्र घटी और वह हमको अच्छी लगी। दो लड़के आये थे। दो दिन तक वे मान मन्दिर पर रुके। वे प्रयाग से आये थे। एक छोटा भाई था और एक बड़ा भाई था। छोटे भाई पर ब्रह्म आता था। वह ब्रह्म राक्षस तो नहीं, कोई अच्छी आत्मा थी। उस ब्रह्म ने उस लड़के से कहा था कि मुझे मान मन्दिर पर ले चलो। उसने लड़के को मेरा नाम बताया और यह भी कहा कि वहाँ (मान मन्दिर में) श्रीजी आती हैं। ब्रह्म के कहने

पर वह लड़का उसे मान मंदिर में लाया और दो दिन तक वह हमारे पास रहा। लड़के पर जब ब्रह्म आता था तो उसकी बोलचाल बदल जाती थी। यद्यपि लोग इस तरह की बातों को सुनकर भयभीत होते हैं किन्तु हम भय नहीं करते हैं। हम जानते हैं कि भय वाले को भय है और यदि भय नहीं है तो नामदेवजी को भूत में से भगवान् ने प्रकट होकर दर्शन दिया था। नामदेवजी द्वारा भूत को देखकर गाया गया प्रसिद्ध पद भी है – **'भले पधारे लम्बकनाथ।'**

नामदेवजी से लोग चिढ़ते थे क्योंकि उनका यश बहुत बढ़ गया था। एक बार किसी गाँव के लोगों ने उन्हें एक स्थान पर रुका दिया और कहा कि महाराज ! अमुक सरोवर के तट पर निवास कीजिये। वहाँ एक ब्रह्मराक्षस रहता था। नामदेवजी सीधे महात्मा थे। ग्रामीणों के कहने पर वे उस स्थान पर रहने के लिए चले गये। उस जंगल में कोई नहीं रहता था। वहाँ सरोवर के तट पर जो पेड़ था, उसके नीचे जो कोई भी सोता था, सुबह वह मरा हुआ मिलता था क्योंकि ब्रह्मराक्षस उस व्यक्ति को नष्ट कर देता था। यह भक्तमाल की कथा है। कोई गप्प नहीं है। जब नामदेवजी उस जंगल में रुके तो मध्य रात्रि १२ बजे वह ब्रह्मराक्षस उनके सामने प्रकट हुआ। जमीन से लेकर आकाश तक उसका शरीर लम्बा था। उस ब्रह्मराक्षस के साथ अन्य भी बहुत से उसके साथी भूत–प्रेत थे। नामदेवजी ने उन्हें देखकर अपनी झाँझ निकाली और कीर्तन करके नाचने लगे तथा यह पद गाया –

ये आये मेरे लम्बक नाथ।
धरती पांव स्वर्ग लौं माथो, योजन भरि–भरि हो हाथ।
सिव सनकादिक पार न पावैं, तैसेइ सखा विराजत साथ।
'नामदेव' प्रभु अन्तर्यामी, कीन्यो मोहिं सनाथ॥

हे लम्बकनाथ ! धरती पर तो तुम्हारा पाँव है और आकाश में मस्तक है। इतना बड़ा तुम्हारा शरीर है। चार कोस लम्बे तुम्हारे हाथ हैं, वैसे ही तुम्हारे सखा भूत–प्रेत हैं। अन्त में नामदेवजी ने कहा – 'नामदेव पर किरपा कीजै' यह पद गाकर नामदेवजी नाचने लगे तो 'भगवान्' ब्रह्मराक्षस में से प्रकट हो गये।

भगवान् बोले – 'अरे नामा ! वह तो ब्रह्मराक्षस था।'

नामदेवजी ने कहा – 'प्रभो ! सब कुछ आप ही हैं।'

अस्तु, वह लड़का मेरे पास आया और बोला कि मैं प्रयाग से आया हूँ। मुझे आपके पास ब्रह्म लाया है। हमने उस ब्रह्म से पूछा कि तुम इस लड़के पर क्यों आते हो ? यह बच्चा है, परेशान है, इसको छोड़ दो। बड़ा आश्चर्य है कि ब्रह्म ने प्रतिज्ञा की कि अब मैं दुबारा इसके ऊपर नहीं आऊँगा। आप कह रहे हैं तो मैं इसको छोड़ रहा हूँ। इसके बाद उस ब्रह्म ने लड़के से कहा कि नीचे कीर्तन होता है। वह कीर्तन मुझे दिखा दो। उस कीर्तन में राधारानी आती हैं।

यहाँ कीर्तन में छोटी–छोटी कन्यायें नाचती हैं। ये सब श्रीजी का रूप हैं। वह लड़का कीर्तन में आया तो ब्रह्म को भी साथ में लाया। उसने बताया कि कल कीर्तन में ब्रह्म भी आये थे। वह सफेद कुर्ता पहने हुए थे, अन्य किसी को नहीं दिखायी दिए किन्तु मैंने उन्हें देखा। वह मेरी पीठ के पीछे से निकलकर गये थे। उस लड़के ने और भी बहुत सी बातें बतायीं, जिन पर अन्य लोग विश्वास नहीं कर सकते।

नवरात्र में देवी पूजन के समय कन्याओं की पूजा होती है। शुद्ध भाव से इनको रखा जाए तो यह साक्षात् देवी की उपासना है। देवी उपासना तभी सिद्ध होती है, जब कन्याओं का पूजन किया जाए, कन्याओं में शुद्ध भाव रखा जाए और इनको देवी ही समझा जाए। इसका प्रमाण है दुर्गा सप्तशती का श्लोक –

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु। त्वयैकया पूरितमम्ब यैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥

(दुर्गासप्तसती ११.६)

हे देवि ! समस्त विद्यायें तुम्हारा ही भेद हैं। संसार की समस्त स्त्रियाँ तुम्हारा ही रूप हैं। हे अम्ब (माँ) ! तुझसे ही सारा संसार भरा हुआ है। यदि ऐसा किसी के अन्दर भाव है तो उसे स्तुति करने की, भजन

करने की क्या आवश्यकता है ? जिसका अन्तःकरण ऐसा शुद्ध हो गया है, जिसके अन्दर ऐसी भावनायें हैं, उसको भजन करने की आवश्यकता नहीं है। वह तो तुम्हारा ही रूप बन गया। इसी प्रकार श्रीराधासुधानिधि के अनुसार –

लक्ष्मीकोटिविलक्ष्यलक्षणलसल्लीला..... ।

(श्रीराधासुधानिधि – ६७)

करोड़ों–करोड़ों लक्ष्मियाँ श्रीजी की पूजा (आराधना) करती हैं, श्रीजी की नहीं अपितु उनकी सहचरियों (सखियों) की उपासना करती हैं। वे राधा ब्रजमण्डल में रहती हैं। करोड़ों–करोड़ों लक्ष्मियों से सेवित सहचरियों के साथ वृन्दावन की कुंजों में घूम रही हैं। उनका नाम राधा है। कोई गौर ज्योति है, जो यहाँ चारों ओर घूम रही है। उज्ज्वल रस (प्रेम) का वह सिंचन कर रही है।

इसलिए जिनका भाव है, उनके लिए तो प्रत्येक नृत्य करने वाली गोपी श्रीजी की सहचरी है। अतः प्रयाग से आये ब्रह्म ने गलत नहीं कहा और उसको यहाँ के कीर्तन में अनुभव भी हुआ। कल रात के कीर्तन में वह यहीं था। आज वह चला गया। जाते समय उस लड़के से बोला कि एक बार मुझे बाबा का दर्शन फिर से करा दो। तब लड़के का बड़ा भाई दोपहर में उसे लेकर हमारे पास कमरे में आया। हमने कहा था कि यह ब्रह्म हमसे आँख क्यों नहीं मिलाता है ? पहले दिन हमारे पास आये थे तो नीचे सिर करके बैठे थे। तब ब्रह्म ने कहा कि आज मैं बाबा से आँख मिलाऊँगा। इसलिए आज वह मेरे पास आया और बड़ी शान्त दृष्टि से हमें देख रहा था। हमने भी उससे आँख मिलायी क्योंकि उसने हमारे प्रेम को सम्मान दिया। हमने उससे कहा कि अब तुम इस लड़के पर मत आना। उसने लड़के से कहा कि बाबा से कह दो कि अब मैं दुबारा नहीं आऊँगा, उनकी आज्ञा मानूँगा।

(१८/१२/२०१३)

हमारे जन्म के पहले यानी अस्सी साल पहले हमारे पिताजी सारे परिवार को लेकर भारतवर्ष भ्रमण कर रहे थे। उसमें हमारी तीन बहनें थीं, उनका परिवार, ससुराल के लोग, इस तरह करीब ५०–६० लोग थे। जब ये सभी जगन्नाथ पुरी के समुद्र में स्नान करने गये तो पिताजी के पास ४०० रुपये थे। जो कि आजकल के हिसाब से चार लाख से भी अधिक हैं क्योंकि अस्सी वर्षों में रुपये की कीमत बहुत बढ़ गयी है। चार सौ रुपये पिताजी ने माताजी को यह कहकर दिए कि मैं स्नान करने जा रहा हूँ, तुम इन्हें सँभाल कर रख लो। किन्तु समुद्र की लहरों में स्नान करते समय वे चार सौ रुपये माताजी के हाथ से छूट गये। पिताजी ज्योतिष शास्त्र के ऐसे प्रकाण्ड ज्ञाता थे कि मनुष्य का चेहरा देखकर ही उसके बारे में सब कुछ बता देते थे। जब ये लोग मुम्बई में थे, एक भी पैसा पास में नहीं था। उस समय दो आदमी कहीं जा रहे थे, उन्होंने मुम्बई में हत्यायें की थीं। उन्होंने हमारे पिताजी से कहा – 'ज्योतिषीजी ! हम कौन हैं ? क्या हमारे बारे में आप कुछ बता सकते हैं ?' पिताजी ने उनसे कहा कि तुम्हारे अपराध के अनुसार तो तुमको फाँसी की सजा होनी चाहिए थी। तब तक माताजी ने वहाँ आकर पिताजी से कहा – 'अरे, ये वे ही तो हैं, जिन्होंने मुम्बई में किसी को छुरे से मारा था।' माताजी की बात सुनते ही वे आदमी उनके चरणों में गिर गये और बोले कि ज्योतिषीजी तो कुछ नहीं जानते हैं, किन्तु ज्योत्षानीजी उनसे अधिक जानती हैं। इसका कारण यह था कि माताजी के सामने ही उस व्यक्ति ने किसी को छुरे से मारा था। बाद में उस व्यक्ति ने माताजी को रुपये की थैली भेंट की तो उन्होंने नहीं लिया, उस थैली को फेंक दिया क्योंकि संतों ने कहा है – **"हत्या हत्या सब कहें हत्यारिन से डराहिं। बड़े हत्यारे सोई जानिये जो हत्यारिन के खाहिं ॥** (श्रीविहारिनदेवजी) हत्यारों के धन का सेवन करना हत्या करने से भई बड़ा पाप है, ऐसे अशुभ (अमंगलकारी) धन का दर्शन–स्पर्श भी नहीं करना चाहिए।

मनुष्य की मृत्यु होने पर उसका शरीर चिता में जल जाता है किन्तु उसकी आसक्ति नहीं जलती है। वही आसक्ति यदि सत्पुरुष में हो गयी तो निश्चित ही मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

❋ बाबाश्री की संरचनाएँ ❋

श्रीजयदेवजीकी क्षमाशीलता

सुन सुजस साधु सेवा का ठग, वे आये सुन्दर वेष बना।
लम्बा चटकीला तिलक भाल, गर कंठी कर माला जपना॥
ये ही कर पद काटन हारे, देखा कवि ने पहिचान लिया।
पर धन्य भक्त का हृदय दयावश, जाना भी अनजान किया॥
बोले नृप सों ये परमभक्त, देखो ये नहिं जाने पावें।
बहता पानी रमते साधू, कब जाने कहाँ बिरम जावें॥
मेरे गुरुभाई बड़े सभी, धन भाग तुम्हारे हे राजन्।
सन्तों की सेवा से गृहस्थ, प्रभु का भी होता है साजन॥
ठगियों ने कवि को देख वहाँ से, भगने का संकल्प किया।
पर सेवक वर्ग तथा नृप ने, उनको जाने से रोक दिया॥
भोजन था चक्र वहाँ पर फिर भी, ठगियों का तन क्षीण हुआ।
कवि दर्शन से शंकित होने से, सुख भी दाहक हृदय हुआ॥
अति दुःखित जानकर कवि राजा से, बोले बिदा करो इनको।
धन देकर विदा किया नृप ने, पहुँचाओ आज्ञा दी सबको॥
सेवक श्रद्धालु चले सँग में, पूछा ठगियों से पहुँच दूर।
हे नाथ आपका–सा स्वागत, नहिं और किसी का हुआ पूर॥
स्वामी जयदेव स्वयं नृप के, सँग सेवा सबकी करते थे।
इतनी श्रद्धा का हेतु बतावें, हम सब सोचा करते थे॥
बोले वे चारों ठग हँस सुन्दर, वेष साधु का धरे हुए।
यह बात गुप्त नहिं कहने की, पर कहते तुम पर दया किये॥
हम सब जयदेव सहित पहले, सेवा इक नृप की करते थे।
अति दीन दशा इनकी थी हम, सब प्यार बहुत ही देते थे॥
भारी इक भूल हुई इनसे, जिससे राजा अति क्रुद्ध हुआ।
हम सबको आज्ञा दिया प्राण, लेने की ऐसा दण्ड दिया॥
ले गए इन्हें हम निर्जन में, प्राणों को नहीं लिया हमने।
नृप की प्रतीति के हेतु काट, कर पद छोड़ा इनको वन में॥
उस कारण ये हमसे कृतज्ञ, रहते हैं जानै और नहीं।
कहते ही धरती फटी और, खा गई ठगों को तुरन्त वहीं॥
पापों की सीमा होती है, जब घड़ा पाप का भरता है।
विस्फोट तभी होता है नर, पहले नहिं सोचा करता है॥
जो बीज आज बोया पृथ्वी में, फल पकने का समय भिन्न।
ऐसे ही पुण्य–पाप दोनों, आगे करते हैं छिन्न–खिन्न॥
सब अपराधों में महापुरुष, का ही अपराध भयानक है।
डरते रहना हो सावधान, साधक अमोघ दुःखदायक है॥
कितना ही भला करो दुर्जन, का नहीं स्वभाव बदलता है।
जो दूध पिलावे नित्य सर्प, उसको ही काटा करता है॥
यह कौतुक देख सभी सेवक, पहुँचे घटना बतलाने को।
सुनकर दुःख से मीड़ने लगे, उन कटे हाथ औ पावों को॥
कौतुक इक नया भया स्वामी, के हाथ पाँव ऊगे पूरे।
यह सब रहस्य की गाथा सुनने, को राजा आये दौरे॥
जिज्ञासा नृप की जान उसे, निज साधु धर्म का ज्ञान दिया।
अपकारी पर उपकार करे, वो ही पृथ्वी में धन्य जिया॥
सर्वत्र एक हरि ही रहते, घट–घट में दर्शन किया करो।
इस प्रकृति भेद को छोड़ अरे, प्रभु भाव सभी में प्रेम भरो॥
व्यवहारी सदा दुःखी रहते, प्रेमी के सुख का कहना क्या।
पर आत्म दृष्टि से प्रेम कठिन, होवे फिर पाना बाकी क्या॥
सुनकर नृप ने विस्मित पूछा, तुम कौन प्रभो मानव तन में।
अनुभव करते सर्वत्र कृष्ण, का मायामुक्त भये जग में॥
ये क्षमा दया धीरज अविचल, नहिं देववृन्द में पाई है।
जिसने ही काटा हाथ पाँव, उनसे ही प्रीति सगाई है॥
तब निज परिचय देकर कवि ने, जिज्ञासा शान्त किया नृप की।
मेरे ही घर में वास करैं, नृप ने भी सुनी कीर्ति जिनकी॥
तब किन्दुबिल्ब से मान सहित, पद्मा को नृप ने बुला लिया।
सत्संग सुधा सरिता उमगी, उन अन्तःपुर में वास किया॥

पद्मावती का आदर्श –

थी पद्मावती सती साध्वी, रानी को धर्म सिखाती थी।
पातिव्रत का उपदेश सिखा, हरि के गीतों को गाती थी॥
सत्संग मध्य रानी के पीहर, से आया इक दूत वहाँ।
बतलाया रानी के भाई, की मृत्यु दुःखद जो भई तहाँ॥
भाई नृप था रानी अनेक, पति मृत्यु दुःखित होकर सबने।
काटा निज हाथ पाँव अपना, हो गई सती कोई संग में॥
यह सब सुन रानी दुःखित भई, बाधावश रुकी कथा हरि की।
भाभी के सतीपने से विस्मित, रानी भूली सुधि सबकी॥
पर स्थिर थी पद्मावती एक, हरि लीला का ही ध्यान किये।
पातिव्रत रानी के भाभी, का उनने नहीं बखान किये॥
बोली पातिव्रत वही सत्य, जो स्वयं प्राण निकले सुनकर।
यह सुनकर रानी खीझ गई, देखूँगी ऐसा चितधर कर॥
झट रचा जाल तिरिया चरित्र का, आई दासी सिखा लिये।
बोली कवि तो सुरधाम गये, सुन रानी कपट विलाप किये॥

हँस बोली पद्मावती अरी, कवि कुशल भला क्यों खिन्न भई।
सुनकर वह लज्जित भई किन्तु, नारी स्वभाव वश कपट ठई ॥
फिर से इक दिन वह किया ढोंग, यद्यपि राजा ने मना किया।
कवि निधन सुनाया दासी ने, पद्मा ने सब कुछ जान लिया ॥
फिर भी आदर्श हेतु इच्छा से, निज प्राणों को छोड़ दिया।
घबराई रानी बहुत तुरत, राजा को जाकर खबर किया ॥
सुनकर राजा अति हुआ खिन्न, बोला स्त्री माया है भारी।
जो स्त्री वश होता है उसने, परलोक लोक दोनों हारी ॥
देखो स्त्री कारण मुझको गुरुपत्नी, हत्या का दोष लगा।
धिक्कार हुआ जग में जीवन, मैं अपराधों में हुआ पगा ॥
यह कहकर चला संग जलने, वह चिता भूमि को पहुँच गया।
सब सुनकर कवि जयदेव शान्त, जा पहुँचे राजा दीन भया ॥
नृप की रक्षा के हेतु उन्हीं ने, अष्टपदी का गान किया।
जिसमें हरि ने पद्मा सन्मुख, कर छन्दपूर्ति थी कृपा दिया ॥
सुन्दर प्रसंग नटनागर का, रस भरा दीन अनुनय तत्पर।
गौरांगी का था प्रणयमान, लालन ने बचन कहे सत्वर ॥
हे प्रिये कृपाशीले छोड़ो, यह मान दाह मेरा करता।
निज वचन सुधारस दान करो, जिससे यह जीवन है पलता ॥
कहती जब कुछ यह प्रभाशालिनी, दन्तपंक्ति मुक्तामाला।
हरती भय रूप अँधेरा डर का, फैला यूथ किरण बाला ॥
यह बदन इन्दु कर सतत वृष्टि, पीयूष मधुर अति दर्शनीय।
लोचन मेरे बनकर चकोर, अपलक पीते आस्वादनीय ॥
यदि सत्य तुम्हारा कोप प्रिये, तो लक्ष्य रूप मैं हूँ उद्यत।
भुजपाशों के बन्धन से बाँधो, अन्य दण्ड हित मैं प्रस्तुत ॥
तुम भूषण हो तुम जीवन हो, तुम जलधि रत्न मेरी सर्वस।
तुम प्राणों की हो प्राण बनो, अनुगामिनि होता मैं तव वश ॥
कृश तनु नव नील कमल जैसे, नेत्रों की श्यामलता सुन्दर।
अनुराग लालिमा भरो जभी, अनुरूप सजेगा इन्दीवर ॥
मणिमाला वक्षःस्थल शोभित, होगी चंचल आलोडन से।
किंकिणी क्वणित हो मध्यदेश, निर्घोष करे सम्मोहन से ॥
स्थलपद्म मानमर्दन पटु ये, श्रीयुगलचरण रंजक उर के।
कमलाभ सलोने स्निग्ध सरस, अर्चन मैं करता यावक दे ॥
मन्मथ विष नाशक शीश फूल, सम मेरे मस्तक के भूषण।
दो पद पल्लव धारण हित जिससे, जीतूँ मैं स्मर के दूषण ॥
इस अष्टपदी में हरि प्रबोध, हित पद्मा का भी नाम लिया।
सुन दिव्य गान प्रभु इच्छा से, उठ बैठी कवि का सती तिया ॥
पद्माजी गई बड़ा कौतुक, चरणों में नृप गिर पड़ा दीन।
धीरज उसको बहु भाँति दिया, कवि ने उसका दुःख लिया छीन ॥
रानी नारी नारी पद्मा भी, पर देखो अन्तर महान।
सोदर विष सुधा भिन्न फिर भी, द्रव रूप यदपि दोनों समान ॥
सेवन से मृत्यु तथा जीवन, परिणाम पूर्ण विपरीत उभय।
करती कुनारि नर का विनाश, सन्नारी देती पद निर्भय ॥
नारी ही नर की जननी है, जीवन है उससे सुरभि प्राण।
वो ही धात्री प्रेयसी मित्र, पोषिका प्रीति कल्याण त्राण ॥
पद्मा ने प्राप्त किया पति से, पहले हरि को जब छद्म रूप।
यद्यपि उनकी निर्मल सेवा, का था प्रताप सुन्दर अनूप ॥
रानी पद्मा–सी साध्वी पाकर, भी खो बैठी हत भाग्या।
पति का विछोह जो हुआ भक्त, कवि से कारण वह थी अज्ञा ॥
फिर आये किन्दुबिल्ब को तज, कर राजभवन का वास सुलभ।
जब रहे वहाँ जीवन भर को, सबसे सुन्दर एकान्त अलभ ॥
आजीवन गंगा–स्नान नियम, करते जयदेव रहे दृढ़ हो।
नित कोस अठारह की दूरी, जाते थे सदा सुखी चित हो ॥
जब हुए वृद्ध तब भी हठकर, इतनी दूरी पूरी करते।
पर होता दैहिक ह्रास जगत में, सब नश्वर फलते झरते ॥
अज्ञानी उसमें रोता है, पर भक्त विवेकी मुद्रित सदा।
वह दैहिक धर्मों को पाकर, प्रभुबल से दृढ़ ज्यों लौह गदा ॥
तब स्वयं मात गंगा ने इनसे, कहा यहाँ क्यों आते हो।
मैं स्वयं प्रगट हूँ उसी ग्राम, सरिता में जहँ तुम रहते हो ॥
विकसित नवीन कमलों को कल, तुम देख मुझे आई जानो।
मेरी अनुभूति वहीं होगी, मेरे वचनों को तुम मानो ॥
ऐसा होने पर सरिता का, जयदेई गंगा नाम हुआ।
कलियुग में भागीरथ प्रभाव, जयदेव चरित में प्राप्त हुआ ॥
भक्तों को क्या कलियुग सतयुग, वे कालातीत सदा से हैं।
यह कालबन्ध मायिक जीवों की, उनको नहिं जो प्रभु के हैं ॥

उपसंहार –

जय जय प्रभु के भक्त, बस कीने जिन जगतपति।
अखिल अण्ड जेहि उदर, जो निज जन भक्तदास बन ॥

(भक्त जयदेव चरित्र)

भक्त बिल्वमंगल चरित्र

जय–जय स्वामिनी राधिका, जय श्री मदन गुपाल ।
जय–जय उनके भक्तजन, लीला रसिक रसाल ॥
बिल्वमंगल सुभग कवि, कृष्ण भक्त सुखरास ।
गाय कृष्णकर्णामृतहि, हरिरस कीन्ह उजास ॥

तिनको गाऊँ सुजश मैं, युगल प्रसादन हेतु ।
भीषण भव तारण सुखद, भक्त चरित–गुन केतु ॥
भक्तों का चरित सुनो चित देकर, भक्ति–प्राप्ति का मार्ग सुलभ ।
जिनके अनुराग आचरण से, जगने पाया है लाभ अलभ ॥
भक्तों का सुजस श्रवण करने को, प्रभु भी मन ललचाते हैं ।
भक्तों की महिमा प्रभु जानै, जग कोई जान न पाते हैं ॥
जिसने जाना दासों की महिमा, वही पा सका इष्ट रूप ।
बिन भक्त संग भव कौन तरा, दुस्तर है भीषण जगत कूप ॥
दक्षिण में नदी कृष्णबेना, बहती है तट पर ग्राम एक ।
इसमें ही मंगल भक्त भये, धन भक्त भूमि जहँ भक्ति सेक ॥
कुल ब्राह्मण जन्म लिया इनने, धन धर्म भरा परिवार सुखद ।
हरिभक्ति पूज्यता का कारण, हरिभक्तिहीन द्विज होय दुःखद ॥
हरि भक्तिधर्म हरिभक्ति सत्य, विद्या तप ज्ञान विवेक योग ।
होवें कृतार्थ हरिभक्ति पाय, बिन भक्ति सभी हैं त्याग जोग ॥
ऐसे कुल में बालक थे जब, सीखा था संयम सदाचार ।
रहता प्रभाव घर का बालक, पर वैसे बनते हैं विचार ॥
पर चलती जब यौवन आँधी, उन्माद धूल लेकर प्रचण्ड ।
हरती विवेक की दृष्टि तथा, धीरज को करती खण्ड–खण्ड ॥
बनकर दावानल कामानल, यौवन आँधी का पा कुयोग ।
दे जला बनाता राख सभी, गुण धर्म आदि जग के सुयोग ॥
दुःसंग रात्रि में अन्धकार, अज्ञान प्रबल जब होता है ।
उसमें सत्पथ को छोड़ जीव, दुःखिया जग फिरता रोता है ॥
संगति में सावधान रहना, संगति का जीवन में महत्व ।
इससे पशुत्व दनुजत्व, देव–रूपत्व परमपदवैष्णवत्व ॥
उस पार नदी के रहती थी, वेश्या चिंतामणि अमलरूप ।
सुन्दर गाती सुन्दर हँसती, मोहित होते थे देख भूप ॥
मंगल भी एक दिवस उसके, घर मित्रों के संग पहुँच गये ।
मकड़ी के जाले में कीड़े, की तरह रूप में उलझ गये ।।
वेश्या कब किसकी होती है, वह तो धन ही की प्यासी है ।
दिखलाती हाव भाव अपना, मानो चरणों की दासी है ।।
ऐसी जो प्रीति बढ़ी मंगल की, भूल गए घर बार सकल ।
निशिदिन उसकी सेवा करते, उसके बिन होते बहुत विकल ।।
ऐसे बिक गए हाथ उसके, छोड़े पितु मातु पूज्य गुरुजन ।
छोड़ी सब लाज लोक कुल की, तोड़ी मर्यादा धर्म भजन ।।

(भक्त बिल्वमंगल–चरित्र)

"रसिकन संग फिरै दिन राती"
रसिकों के साथ दिन–रात पड़े रहो।
महापुरुष के सानिध्य में आप हैं तो केवल यह संत–सन्निधि ही राधारानी के हृदय में आपके प्रति करुणा जगा देगी।

मोहिनि वक्ष नखर नख अंकन ।
कंकण चिह्न पृष्ठ पर मोहन ॥
व्युप्त केश मुख पर संलालित ।
विचरत विकच कमल पर अलिगन ॥
कज्जल रेख गलित दृग कोरन ।
विशिख अपुख हरत प्रियतम मन ॥
लाल अंस पर अवलम्बित भुज ।
लटकत चलत लाड़िली रुन–झुन ॥
मन्मथ मथनी नवरति क्रीड़ा ।
लाल लाड़िली नूतन नूतन ॥

(अष्टयाम भावमालिका)

भावार्थ – (श्रीप्रिया–प्रियतम) श्रीवन की कुञ्ज में प्रातःकाल उठ रहे हैं । नेत्र, वचन, वस्त्र, आभूषण एवं तन ये सभी शिथिल हैं । मोहिनी के वक्षस्थल पर कोमल नखचिह्न हैं । मोहन की पीठ पर कंकण का चिह्न है । मुख पर बिखरे–झूमते केश खिले कमल पर विचरते हुए भौंरों के समान हैं । नेत्र की कोरों में काजल की रेखा मिट गई है किन्तु फिर भी कोर रहित बाण के समान प्रीतम का मन हरण कर रहे हैं । श्रीलाड़िलीजी श्याम के कन्धे पर भुजा दिए हुए लटकती हुई नूपुर बजाती चल रही हैं । यह नवीन प्रेम की क्रीड़ा मन्मथ का भी मन्मथ करने वाली है, क्योंकि लाड़िलीलाल प्रति क्षण नये–नये होते रहते हैं ।

☀ श्रीमीराजी की रसोपासना ☀

'श्रीइष्ट के सामने नाचना' सबसे बड़ा साधन–जप–तप है, जिससे श्रीभगवान् अति प्रसन्न हो (रीझ) जाते हैं। जो लोग श्रीप्रभु के लिए नाचा करते हैं, ये उन पर प्रभु की बहुत बड़ी कृपा है। नृत्य सबसे बड़ी उपासना है। 'नृत्य' को केवल एक कला नहीं समझना चाहिए। 'नृत्य' भगवत्प्राप्ति का एक माध्यम है। मीराजी के साथ गिरिधर गोपाल नाचते थे तो उसके लिए उन्होंने कोई जप, तप थोड़े ही किया था; तो क्या किया था ? उन्होंने स्वयं बताया है – **पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।**

लोग कहें मीरा भई बावरी,
सास कहे कुल नासी रे ॥

रात–रात भर मीराजी जंगलों में घूमतीं, नाचतीं थी। लोग उन्हें पागल कहते, बावरी कहते, कुलनाशिनी कहते थे। **मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,**
आन मिलो अविनासी रे।

उनको अविनाशी (गिरिधर गोपाल) की प्राप्ति हो गयी। ये एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण साधना है। ये एक बहुत बड़ा रसयोग है। जो लोग प्रभु के लिए नाचते हैं, उनका रोम–रोम भगवान् को अर्पित होता है, उनका अंग–अंग प्रभु प्रेम में डूबा होता है; परन्तु नाच वही सकता है जिसको श्रीजी कृपा करके नचाती हैं। एक एटम बम्ब का गोला (जो सभी पापों को ध्वस्त करने वाला है) बता रहे हैं। पद्मपुराण में लिखा है – **पद्भ्यां भूमेर्दिशोदृग्भ्यां दोर्भ्यां चामङ्गलमं दिवः। बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्ण भक्तस्य नृत्यतः ॥**

जो भगवान् के सामने कीर्तन में नृत्य करता है, उसके सब पाप जल जाते हैं। नाचते–नाचते भक्त की दृष्टि जिधर भी जाती है उन सब दिशाओं के पाप जल जाते हैं। नाचते–नाचते कीर्तन में भक्त जब अपनी भुजाओं को ऊपर कर लेता है तो आकाश, स्वर्गादि में जो पाप हो रहे हैं वे सब जल जाते हैं। श्रीव्यासजी कहते हैं – **नैन न मूँदे ध्यान को, अंग न कीन्हे न्यास।**
नाच–गाय रासहि मिले, करि वृन्दावन वास ॥

हमने कभी भी आँख बंद करके ध्यान नहीं लगाया, न ही अङ्गन्यास–करन्यास ही किया। बस नाच–नाच के, गा–गा के प्रभु कि अद्भुत व दिव्य रासलीला में प्रवेश प्राप्त कर लिया। मीराजी ने भी कहा है –

नाचत घुँघरू बाँध के, हाथन लै करताल।
देखत ही हरि सों मिली, तृन सम तजि संसार ॥

नाच–नाच के ही मैंने उन्हें प्राप्त कर लिया लेकिन नाचना कैसे चाहिए ? जैसे प्रह्लाद जी नाचते थे, प्रभु प्रेम में लज्जा छोड़करके जोर–जोर से नाचते थे। कभी–कभी अपने–आप को ही भूल जाते थे।

नदति क्वचिदुत्कण्ठो.....तन्मयोऽनुचकार ह ॥

(श्रीभागवतजी ७/४/४०)

भगवान् ने स्वयं कहा है भक्त कौन है ? भक्त की क्रियायें कैसी होती हैं ? तो कहते हैं जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद् हो रही है, चित्त पिघल गया है, एक क्षण के लिए भी जो रोना बंद नहीं करता, कभी हँसने लगता है, कभी गाने लगता है और जो मेरे प्रेम में दिन–रात नाचता है।

श्रीमद्भागवत में कविजी ने कहा है – प्रभु–प्रेम में भगवान् को रिझाने के लिए लोकबाह्य होकर नृत्य करना ही सबसे बड़ी उपासना है।

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या.....लोकबाह्यः ॥

(श्रीभागवतजी ११/२/४०)

सैंकड़ो जगह नृत्य की महिमा बतायी है; नृत्य एक ऐसी उपासना है जो कि भक्त की पहचान है। नाचते तो हम भी हैं पर हम विषय–भोगों के लिए नाचते हैं। सूरदास जी ने कहा है – **अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ! ॥**

अब हमें समझना है कि भगवान् के आगे नृत्य करने से क्या लाभ होता है ? पद्मपुराण में कहा गया है कि नृत्य एक यज्ञ है इससे बड़ा कोई यज्ञ नहीं है। स्वयं चैतन्य महाप्रभुजी अलात्त चक्र (आग के गोले) की तरह नाचते थे। उनको भी लोगों ने क्या–क्या नहीं कहा। कोई कहता ये तो वाममार्गी हैं, कोई कहता ये चंडी के उपासक हैं। महाप्रभु जी कहते थे –

यो हि नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहु सुभक्तितः । स निर्दहति पापानि कल्पान्तर शतेश्वपि ॥ भगवान् के सामने जो नाचता है उसके सैंकड़ों कल्पों के पाप नष्ट हो जाते हैं, उसे प्रायश्चित करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। बस भगवान् के सामने ठुमका लगा लो, तो एक 'कल्प' माने ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख ८० हजार वर्ष का ब्रह्माजी का दिन और इतनी ही बड़ी रात होती है; यानि ८ अरब ६० करोड़ वर्ष का एक कल्प होता है और ऐसे ही सैंकड़ों कल्पों के पाप भगवान् के सामने नाचने से नष्ट हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत का यही सार है – **त्वं तु राजन् .....न नङ्क्ष्यसि ॥** (श्रीभागवतजी १२/५/२)

शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा है कि न तुम पहले पैदा हुए थे, न नष्ट होगे और मौत तुमको नहीं मार सकेगी; तुम मौत के भी मौत हो। जितना पुलिस से डरोगे उतना ही वो पीटती है। तुम डरते हो इसीलिए मौत डराती है। तुम ऐसे बनो कि मौत तुम्हारे सामने से डर के मारे भाग जाये। भगवद्भक्त डरता नहीं है। ये बात याद रखोगे तो तुम कभी मरते समय नहीं डरोगे, ये ऐसी वाणियाँ हैं जिससे तुम्हारा भय खत्म हो जायेगा और तुम्हें अभय बना देगा।

भगवान् के चरणों का आश्रय मिलने से और भगवान् में विश्वास होने से जीव जो भाग रहा है वो आराम से बैठ जाता है और इसको देख करके काल भाग जाता है।

सिंह की तरह गर्जना करके रहा करो। अभय पद की ओर चलो। गर्जना तभी आती है जब हृदय से भय चला जायेगा। इन सब प्रमाणों को याद रखो, इनका चिंतन करो फिर तुम हजारों का भय दूर कर दोगे। जिसके अंदर डर है वह भक्त नहीं हो सकता। भगवान् ने कहा है –

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः.....आर्जवम् ॥ (श्रीगीताजी १६/१)

पहली सम्पत्ति है अभय; जिसमें अभय नहीं उसे कभी भक्ति नहीं मिलेगी। भागवत में नव योगेश्वरों से नौ प्रश्न किये गये हैं। पहला प्रश्न है कि सारा संसार मृत्यु के भय से ग्रसित है तो अभय पद कैसे मिलेगा, आत्यंतिक क्षेम कैसे मिलेगा? **अतआत्यन्तिकं.....शेवधिर्नृणाम् ॥** (भा.११/२/३०)

संसार में सबसे जरूरी प्रश्न है 'क्षेम', मतलब निर्भयता। हर जीव को ये प्रश्न करना चाहिए। तब उन्होंने कहा –

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य.....निवर्तते भीः ॥

(श्रीभागवतजी ११/२/३३)

ये बड़ा सरल है, केवल भगवान् की उपासना, आराधना करो। मन में आराधना होनी चाहिए। आराधना निर्भय पद देने वाली है। जो नित्य भगवान् के चरणों की आराधना करता है, उससे डर के मारे काल भागेगा। ये महापुरुषों का सन्देश है। हर पल आराधना में रहो। आँख बंद करके इस रास्ते पर चलते रहो। तुम्हारा न कभी पतन होगा, न गिरोगे। बस उपासना, आराधना होनी चाहिए, यही एकमात्र अभय का पद है। श्रीमीराबाईजी कृष्ण–दर्शन की तड़प में आजीवन नाच–गाकर गिरिधर गोपाल को रिझाने के कारण अति निर्भय थीं, किसी भी प्रकार की सांसारिक विपत्तियों का लेशमात्र प्रभाव नहीं पड़ा; एकमात्र श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए की गई निष्काम आराधना में अनन्त शक्ति है, जिससे चराचर सृष्टि का सहज ही परम मंगल (कल्याण) होता है। 'श्रीमीराजी' कृष्ण–विरह में नींद न आने से 'श्यामसुन्दर' को पुकारती थीं – **स्यामसुन्दर पर वार। जीवड़ो मैं वार डारूँगी, हाँ ॥**

तेरे कारण जोग धारणा, लोक लाज कुल डार ।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, नैन चलत दोउँ वार ॥
कहा करूँ कित जाउँ मोरी सजनी, कठिन विरह की धार ।
मीराँ कहै प्रभु कब रे मिलोगे, तुम चरणा आधार ॥

साजन घर आओ नी मीठाँ बोलाँ।

कद की ऊभी मैं पंथ निहारूँ, थाँरे आयाँ होसी भला ॥
आओ निसंक संक मत मानो, आयाँ ही सुख रहेला ।
तन मन वार करूँ न्यौछावर, दीज्यो स्याम मोय हेला ॥
आतुर बहुत विलम मत कीज्यो, आयाँ ही रंग रहेला ।
तुमरे कारण सब रंग त्यागा, काजल तिलक तमोला ॥
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, कर धर रही कपोला ।
मीराँ दासी जनम–जनम की, दिल की घुंडी खोला ॥

हरि बिन कौन गति मेरी।

तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी ॥
आदि अंत निज नाँव तेरो, हीया में फेरी ।
बेर–बेर पुकार कहूँ प्रभु, आरति है तेरी ॥
यौ संसार विकार सागर, बीच में घेरी ।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो, बूड़त है बेरी ॥
बिरहणि पिव की बाट जोवै, राख ल्यौ नेरी ।
दासी 'मीरा' राम रटत है, मैं सरण हूँ तेरी ॥

❋ कृष्णावतार का प्रयोजन 'महारास' ❋

बाबाश्री द्वारा कथित 'श्रीभागवत-सप्ताह-कथा' (२७/२/१९८५) से संकलित

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण का वाङ्मय स्वरूप है, जिसमें रासपंचाध्यायी भागवत का प्राण है। श्रीमद्भागवत-कथा कहते समय 'रासपंचाध्यायी' को छोड़ना नहीं चाहिए। कुछ लोग रासलीला को बिल्कुल आध्यात्मिक कर देते हैं, उससे लीला गौण हो जाती है, उसका रस चला जाता है। कुछ लोग तो घबराकर रासलीला को छोड़ ही देते हैं। श्रीकृष्णस्वरूप श्रीमद्भागवत में 'रासलीला की कथा' को छोड़ना तो भागवत को प्राणहीन करने के समान है क्योंकि रासलीला के पाँच अध्याय भागवत के पाँच प्राण हैं। श्रीकृष्णलीलायें तो अनन्त हैं किन्तु भक्त-महापुरुषों का कहना है कि वे सब अन्य लीलायें उपासक के काम की नहीं हैं, जो ब्रज में उपासना करने आया है। आचार्यों का कहना है कि श्रीकृष्ण की लीलाओं में जो माधुर्यरस से युक्त लीला है, वही उपासक के काम की है। इसलिए देखा जाए तो रासपंचाध्यायी में वर्णित रासलीला की कथा उपासक के लिए सबसे अधिक उपयोगी है, इसे छोड़ना नहीं चाहिए। इसे छोड़ना तो उपासना का गला घोंटना है। अतः रासपंचाध्यायी की कथा को समझना चाहिए और इसीलिए श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था। रासपंचाध्यायी पर जितने भी आचार्यों ने टीका लिखी है, उन्होंने उसके अनेक लक्ष्य बताये हैं। श्रीधरस्वामी तथा अन्य कुछ आचार्यों ने लिखा कि रासलीला के द्वारा भगवान् ने काम पर विजय की, यह कामविजय-लीला है। अन्य आचार्यों ने इसे कामविजय-लीला नहीं बताया बल्कि विशिष्ट रस की अनुभूति या आस्वाद अथवा विशिष्ट रस का प्रवाह बताया है। श्रीधरस्वामीजी ने रासलीला के बारे में लिखा है –

ब्रह्मादिजयसंरूढ़दर्पकन्दर्पदर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः ॥

कामदेव ने एक बार अपने मन में विचार किया कि मैंने ब्रह्माजी को जीत लिया। महादेवजी जब भगवान् के मोहिनी रूप को देखकर पराजित हुए तो कामदेव बड़ा प्रसन्न हुआ, यद्यपि वह कामलीला नहीं थी। मोहिनी के रूप में स्वयं भगवान् ही थे किन्तु फिर भी कामदेव बड़ा प्रसन्न हुआ। इसीलिए श्रीधरस्वामी ने यहाँ ब्रह्मा के साथ 'आदि' शब्द लिखा – ब्रह्मादि। ब्रह्मा आदि देवों पर विजय प्राप्त करने से कामदेव को बड़ा अभिमान हो गया। इसलिए उस कन्दर्प के दर्प को नष्ट करने के लिए श्यामसुन्दर 'श्रीपति-राधारमण-राधाकान्त' जो गोपियों के रासमण्डल के मण्डन अर्थात् शोभा हैं, उन्होंने रास किया; रासलीला का प्रथम लक्ष्य तो ये है। दूसरे आचार्य श्रीधनपतिसूरिजी ने भी लिखा है –

"अहल्यायै जारः सुरपतिरभूदात्मतनयाम्
प्रजानाथोऽप्यासीदभजत गुरोरिन्दुरबलाम् ॥
इति प्रायः को वा न पदमपथे कार्यत मया
श्रमो मद् बाणानां क इह भुवनोन्मायाविधिषु" ॥

(श्रीधनपतिसूरिजी कृत टीका 'भागवतगूढार्थदीपिका')

कामदेव कहता है कि सब लोग मेरा प्रभाव तो देखो कि गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के लिए इन्द्र की क्या हालत हुई ? स्वयं ब्रह्माजी काम मोहित होकर अपनी पुत्री के पीछे दौड़ पड़े। चन्द्रमा अपनी गुरुपत्नी के प्रति कामासक्त होकर दुराचार कर बैठा। सृष्टि में ऐसा कौन है, जिसे मैंने अपथ (कुमार्ग) पर नहीं धर पटका। मेरे बाणों का पराक्रम कौन सह सकता है ? अभी तक तो इस सृष्टि में ऐसा कोई नहीं हुआ, जो मेरे बाणों की टक्कर ले सके। ऐसा कहकर वह अपने धनुष पर टंकार किया करता कि ऐसा कोई है, जो मुझसे लड़ सके, देवता आदि कोई भी इस ब्रह्माण्ड में है; ऋषि-मुनियों को भी मैंने देख लिया।

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य विकसत्सर्वार्थसम्पत्करीम्
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः ॥
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचित्पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे" ॥

ये बेचारे स्त्री को छोड़कर जंगल में जाते हैं किन्तु वहाँ भी मेरे बाणों की चोट से बच नहीं पाते । स्त्री तो मेरी मुद्रा (डाकखाने की मुहर) है । कितने ही लोग स्त्री छोड़कर बाबाजी बन जाते हैं, इसीलिए मैं उनमें कितनों के ही सिर मुण्डित कर देता हूँ, कितनों के पाँच चोटी रख देता हूँ, कुछ को नंगा डोलना पड़ता है ।

इस प्रकार जब कामदेव का घमण्ड बहुत बढ़ गया तो उसके इस गर्व को नष्ट करने के लिए भगवान् ने रास किया; कुछ आचार्यों का ऐसा मत है । कामदेव को श्रीकृष्ण ने रासलीला के द्वारा पराजित किया, यह तो ठीक है परन्तु भगवान् ने जो रासलीला की, उसका मुख्य प्रयोजन तो कुछ और ही था, केवल कामविजय ही लक्ष्य नहीं था, इसके बारे में कुछ आचार्यों ने लिखा है – **'तदवतारमुख्यतरप्रयोजनं दर्शयन् रासक्रीडां पञ्चप्राणतुल्यपञ्चाध्याय्या वर्णयन् आदौ'**

(श्रीमत्सनातनजीवगोस्वामिकृतबृहत्तोषिणी)

कृष्णावतार का मुख्य प्रयोजन ही 'रासलीला' थी । इसीलिए उस अवतार का मुख्य प्रयोजन भगवान् अब सिद्ध करने जा रहे हैं । रासलीला के पाँच अध्याय 'पञ्च प्राण' के समान हैं । इसलिए रासलीला करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि जो रस बड़े–बड़े परमहंसों के लिए भी दुर्लभ था, वे भी इस रस को नहीं प्राप्त कर सके, अतः वे भी इस रस का आस्वादन कर सकें, इसलिए प्रभु ने रासलीला की थी; यही मत महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी का भी है, उन्होंने सुबोधिनी में लिखा है – **ब्रह्मानन्दात्समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने ।**
लीला या युज्यते सम्यक् सा तुर्ये विनिरूप्यते ॥

'रासरस' ब्रह्मानन्द से बहुत ऊपर की वस्तु है । आत्माराम मुनियों को ब्रह्मानन्द से ऊपर उठाकर के श्रीकृष्ण के माधुर्य रस का रसास्वादन कराना ही रास लीला का लक्ष्य है । सभी आचार्यों ने इस बात को बताया कि असुरों का वध करना तो बहुत ही छोटी बात है । श्रीकुन्तीजी ने कहा है – **तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्म्नाम् ।**
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥

(श्रीभागवतजी१/८/२०) वस्तुतः परमहंस आदि मुनियों को भी जो रस दुर्लभ है, उन्हें उसे प्रदान करने के लिए ही भगवान् ने रासरस को प्रवाहित किया ।

अब इससे यह समझ में आ गया कि कोई अद्भुत रस को संसार के लोगों के समक्ष प्रवाहित करने के उद्देश्य से ही भगवान् ने 'रासलीला' की थी । अब यह प्रश्न आता है कि भगवान् ने जो रास किया तो वह रास है क्या ? इसका उत्तर है – **'रसानां समूहः इति रासः'** – रसों का जो समूह है, वही रास है । यदि रस का समूह रास है तो ये साहित्य में वर्णित नौ रस हैं या कोई अन्य रस हैं; ऐसा नहीं है, यद्यपि वे भी रस हैं और रास में आते हैं, जैसे – भयानक रस है । भगवान् ने गोपियों से कहा – **रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता** – (श्रीभागवतजी १०/२९/१९) 'रात का समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े–बड़े भयावने जीव–जन्तु इधर–उधर घूमते रहते हैं ।' अतः भयानक आदि रस भी इस रास में आते हैं परन्तु रसराज अर्थात् रसों का राजा है श्रृंगार और श्रृंगार रस के जितने भी भेद हैं, उन सब रसों का एक साथ श्यामसुंदर ने जहाँ आस्वादन किया, वही है रास । श्रृंगार रस के क्या भेद हैं तो इसमें भी स्वकीया रस है, परकीया है, नित्य विहार अथवा नित्य दाम्पत्य है अथवा इनके भी अवान्तर भेद हैं । स्वकीया और परकीया के भी कई अवान्तर भेद हैं अथवा कहीं–कहीं इनके मिश्रण भी दिखाए गये हैं । अतः जितने भी ये रस हैं, इन सबका समूह अथवा इनका सम्मिलित रूप ही रास है । रास लीला में ये सभी रस सिद्ध होते हैं और इनका संकलित रूप ही महारास है । रास का मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि केवल नाचना–गाना ही रास है । भगवान के महारास में नृत्य–गान भी हुआ, जल विहार भी हुआ, वन विहार भी हुआ, श्यामसुन्दर ने प्रियाजी का पुष्प श्रृंगार भी किया, रहो विहार अर्थात् एकान्तिक निकुंज लीला भी हुई । जितने भी रस हैं, उन सबका समष्टि रूप ही 'रास' है; इन सबमें नृत्य मुख्य इसलिए है क्योंकि इसमें संगीत की पद्धति से

समस्त विहार होता है। नृत्य में भी केवल नृत्य नहीं है, जैसे हम लोग समझते हैं कि रास में केवल नृत्य होता है। नृत्य तो रास का एक आस्वाद्य रूप है, नृत्य तो एक क्रिया है। आस्वाद्य तो रस है वहाँ, इस बात का ध्यान रखना है। केवल नृत्य करना रास नहीं हो सकता। रास में नृत्य कैसा होता है, इसे भी थोड़े में समझ लो। उस नृत्य को शास्त्र में कहीं–कहीं 'हल्लीशक' नाम दिया गया है। जहाँ एक नायक होता है तथा अनेकों नर्तकियों का गण (नर्तकी गण) होता है। नायक अनेक नर्तकी गणों के साथ जो नृत्य करता है, उसे हल्लीशक कहा जाता है। आचार्यों ने रास के नृत्य का यह एक नाम बताया है परन्तु यह नाम बताकर आचार्यों ने विचार किया कि अभी भी हम पूरी तरह से नहीं बता पाए क्योंकि उस समय 'हल्लीशक' नामक नृत्य की कोई परम्परा रही होगी और उस नृत्य परम्परा को उस समय देखकर आचार्यों ने विचार किया कि हमने समझाने के लिए ऐसा कह तो दिया किन्तु वास्तविकता तो इसमें भी नहीं है। रास का नृत्य तो इससे भी उत्तम कोटि का होता है। 'तदपि कहे बिन रहा न कोई' परम तत्त्व का यथार्थ वर्णन तो कोई नहीं कर सकता परन्तु कहे बिना रहा भी नहीं जाता है। भगवान् की उपमा संसार की वस्तुओं से नहीं दी जा सकती किन्तु उपमा देने के लिए फिर और कुछ तो है ही नहीं, इसलिए सांसारिक वस्तुओं से ही उपमा देनी पड़ती है। अतएव रास नृत्य को हल्लीशक नृत्य की तरह बताने पर भी आचार्यों ने कहा कि यह भी ठीक नहीं है क्योंकि रास नृत्य तो सबसे विलक्षण है। वह नृत्य तो स्वर्ग में भी नहीं है, फिर भला पृथ्वी पर कहाँ हो सकता है। इसका प्रमाण उन्होंने दिया है कि जिस समय श्यामसुन्दर वंशी बजाते थे या किसी राग–रागिनी का विस्तार करते थे तो वंशी की ध्वनि पूरे ब्रह्माण्ड में सब सुनते थे, ब्रह्माजी, शिवजी, सब देवगण, देवांगनाएँ, गन्धर्व आदि। 'शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः' (श्रीभागवतजी १०/३५/१५) शिव एवं उनके गणों में पार्वती, गणेश आदि, इन्द्र तथा उनके गणों में गन्धर्व–अप्सराएँ आदि, ब्रह्मा के गण में सरस्वती, सनकादिक आदि सभी हो गये परन्तु ये सब वंशी की ध्वनि सुनकर भी यह नहीं जान पाते थे कि श्रीकृष्ण ने कौन सा राग गाया, कौन सा ताल गाया, ये जान नहीं पाते थे – 'कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः' वे जान ही नहीं पाते थे कि कौन सा राग गाया, कौन सी ताल थी, किस प्रकार का नृत्य था, कौन सी धमार गाई, कौन सी रागिनी थी ? इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब श्रीकृष्ण की वंशी के संगीत को ब्रह्मा, शिव आदि बड़े–बड़े देवगण नहीं समझ सके तो फिर रास तत्त्व को वे कहाँ से समझ सकते हैं, इसलिए रास का नृत्य–संगीत तो अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीय इसलिए भी है क्योंकि रास को प्राकृत समझना ही नहीं चाहिए। भागवत में वर्णन है कि भगवान् ने रास करने के पहले योगमाया का आश्रय लिया। योगमाया वह शक्ति है, जो प्राकृत धाम में सभी वस्तुओं को अप्राकृत बना देती है। भगवान् के अप्राकृत धाम की जितनी भी विभूतियाँ हैं, सब पृथ्वी पर आ जाती हैं और जो वस्तु प्राकृत दिखती है, वह भी अप्राकृत हो जाती है। इसलिए भगवद् धाम की या रास की वस्तुओं को प्राकृत वस्तुओं के शब्दों में न तो उनकी व्याख्या की जा सकती है, न ही प्राकृत शब्दों के रूप में उनको समझा जा सकता है और न ही प्राकृत राग–रागिनी की विधाओं से उसकी तुलना की जा सकती है। ब्रह्मा–शिव आदि भी श्रीकृष्ण के संगीत को नहीं समझ सके। इसीलिए आचार्यों ने कहा कि ब्रह्मलोक तक ऐसी कोई पद्धति है ही नहीं फिर पृथ्वी पर कहाँ से हो जाएगी क्योंकि हल्लीशक नृत्य में नायक एक व नायिकायें अनेक होती हैं किन्तु नायक अनेक रूप तो धारण नहीं कर सकता है जैसे रास में कृष्ण अनन्त रूप धारण कर लेते हैं, कैसे बन गये हैं, योगमाया के आश्रय से। इसीलिए श्यामसुन्दर ने उस दिव्य अप्राकृत रस को प्रकट लीला में सबके सामने प्रवाहित करने का विचार किया।

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा। सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः। *(श्रीभागवतजी ११/२/५०)*

उत्तम भक्त में मेरा–तेरा की भावनाएँ नहीं होती हैं। जो घर–परिवार, जमीन–जायदाद, धन–संपत्ति, शरीर आदि में भेद–बुद्धि (मैं–मेरापन) नहीं रखता; वही उत्तम भागवत है।

☀ संस्कार से स्मृति ☀

(बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग '२८/७/२००९' से संकलित)

ध्यायतो विषयान्पुंसः ..... प्रणश्यति ।

(श्रीगीताजी २/६२,६३)

विषयों का चिन्तन करने से उस विषय में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है, कामना से क्रोध, क्रोध से सम्मोह की उत्पत्ति तथा सम्मोह से स्मृति का नाश होता है और फिर उससे बुद्धि का नाश एवं बुद्धि नाश से सर्वनाश हो जाता है। इस प्रसंग में संस्कारों की बात चल रही है क्योंकि विषयों का चिन्तन हुआ क्यों ? विषयों पर ध्यान गया क्यों ? विषयों की याद आयी क्यों ? क्योंकि ऐसे संस्कार थे। सबका मूल है – संस्कार। भगवान् ने **'ध्यायतो विषयान्पुंसः'** से बात उठायी लेकिन विषयों का ध्यान हुआ क्यों ? इस प्रश्न का उत्तर यहाँ नहीं है। इसलिए किसी भी ग्रन्थ को पढ़ते समय सारी बात एक ही लाइन में नहीं लिखी जाती है, आगे–पीछे लिखी जाती है। पूरा ग्रन्थ पढ़ने के बाद तब तत्त्व–निर्णय किया जाता है, इससे ग्रन्थ समझ में आता है और ग्रन्थकार का अभिप्राय क्या है, यह समझ में आता है। कभी–कभी ग्रन्थकार 'पूर्व पक्ष' स्थापित करते हैं, जिसका खण्डन वह स्वयं आगे चलकर करते हैं, उसे 'उत्तर पक्ष' कहते हैं। 'पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष' न्यायशास्त्र में बहुत चलता है। न्याय में ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है, जिसमें पहले पूर्वपक्ष न रखा जाए। 'उत्तर पक्ष' को सिद्धान्त कहा जाता है। 'सिद्धान्त' माने सिद्ध है अन्त जिसका अर्थात् अन्त में जो चीज निर्णीत की गयी है, जिसके बाद कोई परिवर्तन नहीं होता है, उसे 'सिद्धान्त' कहते हैं। 'सिद्ध अन्त' यानि फिर उसमें आगे कोई परिवर्तन नहीं होगा, पूर्व पक्ष नहीं होगा, किन्तु–परन्तु नहीं होगा; इसको 'सिद्धान्त' भी कहते हैं और कहीं–कहीं ग्रन्थों में 'राद्धान्त' भी कहते हैं। 'राद्ध' माने भी सिद्ध होता है। सिद्धान्त में उत्तर पक्ष आता है। 'पूर्व पक्ष' जितने भी होते हैं, वे समाप्त हो जाते हैं; तब 'उत्तर पक्ष' आता है। इसलिए किसी एक पंक्ति से पूरा ग्रन्थ समझ में नहीं आता है। अब जैसे गीता के श्लोक २/६२ में भगवान् ने बताया कि विषयों का ध्यान करने से उनमें आसक्ति हो जाती है तो प्रश्न उठता है कि जीव को विषयों का ध्यान हुआ क्यों ? विषयों का ध्यान होने के बाद विषय में आसक्ति हुई, उससे काम का उदय हुआ, फिर क्रोध उत्पन्न हुआ, उससे सम्मोह, सम्मोह से स्मृति नाश आदि हुआ। यह तो ठीक है किन्तु यह बात इस जगह नहीं खोली गयी कि विषयों की याद क्यों आयी ? इसका उत्तर भगवान् ने गीता के आठवें अध्याय और उसके आगे भी दिया है। अर्जुन ने आठवें अध्याय के आरम्भ में भगवान् से सात प्रश्न किये कि ब्रह्म क्या है ? कर्म क्या है, अध्यात्म क्या है, अधिभूत क्या है, अधिदैव क्या है, अधियज्ञ क्या है, अधियज्ञ की प्राप्ति कैसे होगी ? इस तरह सात प्रश्न अर्जुन ने एक साथ किये। संक्षेप में भगवान् ने इन प्रश्नों के उत्तर भी दे दिए। भगवान् ने बताया कि 'ब्रह्म' ही अविनाशी (अक्षर) है। अपना 'स्वभाव' ही अध्यात्म है। 'स्वभाव' ही तो कारण शरीर बनता है। 'कर्म' वही है, जिससे कल्याण होता है – **भूतभावोद्भव**। चोरी करना कर्म नहीं हो सकता। इस प्रकार के कार्य तो विकर्म हैं। 'कर्म' तो वही है, जिससे प्राणियों का उद्भव (विकास) हो, निर्माण हो। बाकी खाना–पीना, मल–मूत्र त्याग करना, विषय भोग करना, पैसे जोड़ना – ये सब कर्म नहीं हैं, ये तो पाप हैं। भगवान् ने कहा कि कर्म तो एक ही है – **'भूतभावोद्भवकरः'** जिससे समस्त प्राणियों को लाभ हो, उद्भव (विकास) हो, वही 'कर्म' कर्म है। केवल अपना पेट भरना कर्म नहीं है। अपना पेट तो चूहा–बिल्ली भी भर लेते है। 'अधिभूत' क्या है ? तो भगवान् ने बताया कि ये सब

संसार अधिभूत है, जो विनाशी है। **'अधिभूतं क्षरो भावः'** सारा संसार विनाशी है। हम सबका शरीर विनाशी है, पुत्र–परिवार विनाशी हैं, घर–मकान विनाशी हैं। जो चीज नष्ट हो रही है, कभी टिक ही नहीं सकती, मनुष्य उसको टिकाने का प्रयास करता है किन्तु जब घड़े में पेंदा ही नहीं है तो उसमें पानी कहाँ से रुकेगा ? 'सृष्टि' आधार रहित है। इस तरह अधिभूत तो क्षर (विनाशी) है और जो हिरण्यगर्भ पुरुष, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा आदि नामों से जाना जाता है, वही 'अधिदैव' है। 'अधियज्ञ' क्या है तो भगवान् ने कहा कि समस्त यज्ञों का उपास्य, सर्वेश्वर मैं हूँ। अर्जुन के छः प्रश्नों का उत्तर भगवान् ने दे दिया। सातवाँ प्रश्न यह था कि अधियज्ञ की प्राप्ति कैसे होती है ? **'प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि'** – मरते समय हम आपको कैसे जानें ? मरते समय यदि स्त्री की जानकारी की, स्त्री को याद किया तो अगले जन्म में 'स्त्री' बनना पड़ेगा। मृत्यु के समय यदि 'पैसा–धेला' में मन गया तो अगले जन्म में सर्प बनोगे और संग्रहीत (इकट्ठा किये गये) धन के निकट सर्प बनकर निवास करोगे। तुम्हें यह विचार करना पड़ेगा कि अन्तकाल में तुम्हारी बुद्धि 'अधियज्ञ' (भगवान्) में लगती है कि नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा –

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(श्रीगीताजी ८/५)

जो मनुष्य अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है तो वह मुझको ही प्राप्त करता है।

इस तरह भगवान् ने रास्ता बता दिया। भगवान् ने कहा कि चित्त का काम है – स्मरण करना। 'स्मरण करना' चित्त की वृत्ति होती है। अन्तःकरण एक ही है किन्तु वृत्तियों के भेद से उसका विभाग (हिस्सा–बाँट) किया गया है। जैसे – 'चित्त' स्मरण करता है, उसमें संस्कार रहते हैं; मन उसके हिसाब से संकल्प करता है, आगे बढ़ता है, फिर बुद्धि निश्चय करती है। 'अहं' अनुभवात्मक है। सुख–दुःख का अनुभव 'अहं' में होता है; इस तरह एक होने पर भी अन्तःकरण के चार विभाग किये गये हैं। 'संकल्पात्मिका–शक्ति' मन के पास है। 'स्मरणात्मिका–शक्ति' चित्त के पास है, 'निश्चयात्मिका– शक्ति' बुद्धि के पास है, 'अनुभवात्मिका–शक्ति' अहं के पास है; ये चारों मिलकर काम करते हैं, जैसे – खाट के चार पाये होते हैं, एक पाया टूट गया तो फिर ठीक से उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। अब कोई चीज याद क्यों आयी, उसका स्मरण क्यों हुआ ? तो २/६२ में जो विषय था, उसका उत्तर भगवान् ने ८/६ में दिया है –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

मनुष्य जिस–जिस भाव को याद करते हुए शरीर को छोड़ता है। कोई अपनी स्त्री की याद में शरीर छोड़ता है। कोई बेटा–बेटी की याद में, कोई पैसे की याद में, कोई जमीन की याद में, कोई मुक़दमे की याद में शरीर छोड़ता है। जिस चीज को याद करते हुए वह शरीर छोड़ता है – 'तं तमेवैति' वह उसी को प्राप्त करता है। अब याद क्यों आयी ? भगवान् ने एक शब्द में इसका उत्तर दे दिया – **'सदा तद्भावभावितः'** यह बहुत बड़ा उत्तर है। कोई चीज, जो तुम्हारे अन्दर ऐसा संस्कार डाल गयी है कि तुम्हारे अन्दर वैसा ही भाव पैदा होता है, उसको 'संस्कार' कहते हैं। 'सदा तद्भावभावितः' माने ऐसे संस्कार जो अन्तिम समय तुम्हारे सामने फोटो बनकर आ गये। जिसका संस्कार गहरा पड़ता है, उसी की याद आती है। यदि कहीं पर राग के कारण गहरे संस्कार बन गए तो वे राग के ही संस्कार याद आयेंगे और यदि द्वेष के कारण गहरे संस्कार बने तो द्वेष के ही संस्कार अन्तिम समय में याद आयेंगे; यही अकाट्य सिद्धान्त है क्योंकि स्वयं भगवान् ने ही गीताजी में कहा है।

☀ भगवद्रस में बाधक विषयरस ☀

बाबाश्री के श्रीमद्भगवद्गीता–सत्संग (६/२/२०१२) से संकलित

(श्लोक – ६० की शेष व्याख्या ...)

खाने–पीने, लड्डू–पेड़ा के लिए साधु लोग पंगतों में बहुत घूमा करते हैं, ये सब विषय है, इसको जहर समझना चाहिए। भगवान् ने इसी बात को इस श्लोक में कहा है

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

(श्रीगीताजी २/६०)

वृन्दावनवासी एक वीतरागी महात्मा (हाथी बाबा) कहते थे – लड्डूगोपालजी की मूर्ति को ध्यान से देखो तो उनके एक हाथ में लड्डू और दूसरे हाथ में बंसी है, इसका आशय यह है कि गोपालजी कहते हैं कि या तो लड्डू ले लो या बाँसुरी ले लो। लड्डू लोगे तो बाँसुरी नहीं मिलेगी और बाँसुरी लोगे तो लड्डू नहीं मिलेगा। 'लड्डू' का तात्पर्य है संसारी सुख और 'बाँसुरी' का अभिप्राय है रास– रस अथवा भक्तिरस। कथनाशय है कि संसारी सुख की कामना रखने वाले को दिव्य भक्ति–सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती तथा भक्ति–सुख के अभिलाषी को तुच्छ विषय सुखों का त्याग करना होगा।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

(श्रीगीताजी २/४४)

'भोग और ऐश्वर्य' – ये दो चीजें भगवान् से अलग कर देती हैं। यही बात भगवान् इस श्लोक में भी कह रहे हैं – 'यततो ह्यपि कौन्तेय....।'.विपश्चित अर्थात् बहुत ऊँचा पारगामी विद्वान है जो उस पार की देखने वाला है और 'यततः' अर्थात् साधन कर रहा है, केवल शास्त्र पढ़ने वाला पंडित नहीं है अपितु साधनपरायण है फिर भी उसकी इन्द्रियाँ उसके मन का हरण कर लेती हैं। ऐसा क्यों होता है, इसका उत्तर २/५९ में दिया जा चुका है

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

(श्रीगीताजी २/५९)

किसी ने भोजन छोड़ दिया, निराहार है किन्तु मन में विषयरस बाकी रहता है, वह तो भगवान् के अनुभव के बाद ही जाता है। 'परं' माने भगवान् का अनुभव, परम तत्त्व भगवान् हैं, उनके अनुभव के बाद ही विषयरस जाएगा। 'विषयरस' माने भोग के संस्कार, वे भोजन छोड़ने से नहीं जाते हैं, वे तो भगवद्–अनूभूति से ही जाते हैं। आगे के श्लोक मे भगवान् कहते हैं –

श्लोक – ६१

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

'तानि' – उन इन्द्रियों को, 'सर्वाणि' – सभी इन्द्रियों को, 'संयम्य' – जो संयम कर लेता है; वही युक्त है, साधन मेंः लग गया और 'मत्परः' – मुझ कृष्ण के परायण हो जाता है। जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसकी बुद्धि अपने आप प्रतिष्ठित हो जाती है, वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है।

भगवान् ने इस श्लोक में कहा है कि 'मत्पर' होने के लिए इन्द्रियों का संयम जरूरी है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो गयी। यही बात भागवत में भी कही गयी है – **देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।**
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५ /३२)

'भक्ति' इन्द्रियों से प्रारम्भ होती है। इन्द्रियों का संयम भगवान् में हो गया तो भक्ति मिल गयी। जिसको अपना पतन नहीं करना है, उसको विषयों का चिन्तन या ध्यान नहीं करना चाहिए। विषयों के चिन्तन से आसक्ति हो जाती है। स्त्री–पुरुष की आसक्ति क्यों होती है क्योंकि उनका पारस्परिक विषय का सम्बन्ध होता है, इसीलिए आसक्ति होती है, विषय न होता तो इतनी आसक्ति न होती, विषय–भोग के चिन्तन से आसक्ति होती है।

☀ भारत का गौरव 'श्रीमाताजी गौशाला' ☀

विशुद्ध भाव से हमें गौसेवा करनी चाहिए, इसके निमित्त प्राप्त धन का दुरुपयोग हमें नारकीयता में ले जायेगा। गाय जब अपने दूध से अपना स्वार्थ नहीं रखती तो हम गौ–सेवा के धन से अपनी स्वार्थ पूर्ति करें, यह उचित नहीं। "**गावो विश्वस्य मातरः**" गाय किसी व्यक्ति विशेष की नहीं सम्पूर्ण विश्व की माँ है अतः सम्पूर्ण राष्ट्र का परम धर्म है गौ वध निवारण व गौ सेवा। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के २/२६ में गौरक्षा पर राजा को पूर्ण रूपेण ध्यान देने का निर्देश किया है। अशोक के शिला लेखों में गौहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध द्रष्टव्य है।

बदाउनी ने लिखा है कि हिन्दुओं तथा जैनियों के प्रभाव से अकबर के राज्य में कोई भी गौ वध नहीं कर सकता था। बी.ए. स्मिथ ने अपने इतिहास प्र.–१०१ पर जहाँगीर के विषय में यहाँ तक लिखा है कि वह जान या अनजान में भी गौहत्यारों को फांसी पर लटकाने में नहीं हिचकता था। महात्मा गाँधी, स्वामी करपात्री जी, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, हनुमान प्रसाद पोद्दार जी (भाई जी) ने भी प्रयास किया भारत में पूर्णतः गौवध बन्द कराने का किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है जो अंधे शासक अपने लाभ को न देख पाने के कारण विनाश की ओर बढ़ रहे हैं गौरक्षक के नाम पर गौभक्षक बन रहे हैं। ऐसी स्थति में पवित्राचार, श्री, ऐश्वर्य एवं शांति स्थापन देश में कदापि सम्भव नहीं है। जब तक भारत में गाय का आदर था, दूध–दही की नदियाँ बहती थीं, देश में शांति थी, देवता भी यहाँ जन्म लेने को लालायित रहते थे। स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी तो केवल घृत पान करने के लिए पुरुरवा के साथ भारत में बहुत दिनों तक रही। राजा मरुत के यज्ञ में देवगण स्वयं परिवेषण कार्य करते थे, विश्वेदेव सदा सभासद बनकर रहते। गौ सेवक गोविन्द का सर्वाधिक प्रिय बन जाता है यह तो निश्चित है ही। १० वीं शताब्दी तक भारतवर्ष गौवंश के लिए स्वर्ग की भाँति था। महमूद गजनवी के आक्रमण से (९९ से १०३० ई.) पूर्व मुसलमान सूफी संत भारत में आकर साधन करने लगे थे। गाय को बड़ा आदर देते थे। बाबर (१५२६ से १५३०) की दूरदर्शिता ने बहुसंख्यक समाज की इस बद्धमूल भावना को परखा। इस्लाम भी इस धर्म के विरुद्ध नहीं अतः भारत में गौहत्या बन्द कराई। अकबर (१५४२–१६०५) ने भी गौवध बन्द करा दिया। १८वी शताब्दी से कानून कुछ बदलने लग गए। १९वी शताब्दी में माँस भक्षण को स्थायित्व दे दिया विज्ञान ने। इसके लिए गौवध उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा। १९०५ में गौरक्षा का प्रश्न उठा तो यही कहा गया कि अंग्रेज मांसभक्षी हैं, इन्हें जल्द से जल्द देश से निष्कासित किया जाए। उस समय गाँधी जी ने यहाँ तक कहा – हम स्वतंत्रता के लिए कुछ समय प्रतीक्षा भी कर सकते हैं किन्तु गौहत्या होना हमें एक दिन भी सहन नहीं होगा। आज भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु गौवध बन्द न हुआ। जब भारतीय ही गौवध करेंगे तो इस पर रोकथाम लगाने के लिए इटैलियन या अमरीकी नहीं आयेंगे। भारत सोने की चिड़िया था एवं पुनः पूर्ववत हो सकता है क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली भूमि अन्यत्र नहीं है।

"गावो विश्वस्य मातरः" वेदों में गाय को सारे संसार की माता कहा गया। ऐसा क्यों कहा गया ? क्योंकि हर व्यक्ति की माँ अलग–अलग होती है सभी की जन्मदात्री सभी योनियों में अलग–अलग होती है और वह अपने दूध से अपने शिशु का पोषण करती है। जन्मदात्री को जननी कहा गया वह जननी जन्मदात्री होते हुए भी केवल थोड़े दिन ही अपने दूध से शिशु का पोषण करती है कुछ दिन बाद उसका दूध सूख जाता है और प्राणीमात्र के पोषण के लिए गौमाता का आश्रय करना पड़ता है। जिसका दूध कभी नहीं सूखता है। मनुष्य जीवन की अंतिम श्वास तक गौ माता के दूध से पोषण होता है। जन्म देने वाली माँ सदा पोषण नहीं कर सकती है केवल अपने से उत्पन्न शिशु का पालन थोड़े दिन कर सकती है किन्तु गौमाता संसार के सभी प्राणियों का पोषण करती है। अपनी माता बच्चे से सेवा का भी स्वार्थ रखती

है जबकि गौमाता निःस्वार्थ भाव से दूध दान करती है। ऐसी संसार की जननी गौ माता को मारना अपनी सैकड़ों जननियों से ज्यादा घृणित है मातृभक्ति की दृष्टि से ही नहीं कृतज्ञता की दृष्टि से भी गौ हत्या करना पाप है। अपनी माँ (जन्मदात्री) का मल–मूत्र कभी पूज्य नहीं हो सकता और वह मल रोग कारक और विषाक्त होता है। उसमें घातक रोगाणुओं की भरमार रहती है किन्तु गौमाता का गोबर मल नहीं वरन श्रेष्ठ है निर्दूषज है रोग नाशक है किसी को खुजली हुई हो गोबर में गोमूत्र मिलाकर लेप कर धूप में बैठ जाओ, सभी खुजली रोग के बैक्टीरिया नष्ट हो जायेंगे। अनुपान के साथ सेवन किया जाए तो विश्व के सभी रोगों पर गौबर–गौमूत्र से उपचार हो सकता है। गोबर से बनी खाद से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि प्राचीन भारत को सोने की चिड़िया इसलिए कहा जाता था। भारत सोने की चिड़िया था एवं पुनः पूर्ववत् हो सकता है क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली अवनि अन्यत्र नहीं हैं। भारतवर्ष में आज भी इतनी शक्ति है कि अकेला भारतवर्ष समग्र विश्व को शुद्ध अन्न दे सकता है।

विश्व की जनसंख्या लगभग ६०० करोड़ है। १ वर्ष के लिए सारे विश्व को अनाज = ६०० करोड़ कुन्तल। भारत में १ हेक्टेयर भूमि में ६० कुन्तल अनाज पैदा होता है। भारत की १९ करोड़ हेक्टेयर भूमि में ११४० करोड़ कुन्तल अनाज पैदा हो सकता है। सारे विश्व को ६०० करोड़ कुन्तल अनाज खिला देने के बाद भी भारत के पास ५४० करोड़ कुन्तल शेष बच जाता है। संत हृदय नवनीतवत् होता है। इस कारण 'श्रीमानमन्दिर' के महाराजश्री ने गौरक्षा का विशेष अभियान २००७ में प्रारम्भ कर एक गौशाला की स्थापना "श्रीमाताजी गौवंश संस्थान" के रूप में की, जिसमें ब्रज की अनाथ गायें तो पलती ही हैं, इसके अतिरिक्त बाहर से भी गायें यहाँ आती रहती हैं। एकमात्र यह ऐसी गौशाला है जहाँ गायें आती हैं तो मना नहीं किया जाता। १५–१६ वर्षों में ही आज विश्व की सबसे बड़ी गौशाला यहाँ बन गई है, जिसमें लगभग ६५००० गौवंश मातृवत् पल रहा है। गाय के गोबर, मूत्र के विविध उत्पादों के द्वारा ब्रजवासियों को धन–सम्पन्न बनाना, निरोग बनाना, अन्यान्य लाभ दिलाना यह भी संकल्प उक्त संस्था का है, जिस पर कार्य प्रारम्भ हो रहे हैं। ब्रजवासी, ब्रजभूमि, भगवान् सभी का एक स्वरूप है, तीनों की सेवा यहाँ सहज ही लक्षित हो रही है। भारतवर्ष में गौ भक्त व भगवद् भक्त हैं ही नहीं, ऐसा नहीं है। भारतीय सनातन संस्कृति में महापुरुष सदा रहे हैं, तभी धर्म की ध्वजा आज तक फहरा रही है, पृथ्वी धरातल पर स्थित है; फिर भी समग्र राष्ट्र को गौभक्ति व भगवद्भक्ति में संलग्न न देखकर हृदय दुःख से द्रवित होता है।

६५ हजार गायों का मातृवत् पोषण कर रहे पूज्य गुरुदेव श्रीबाबामहाराज का कथन है कि वस्तुतः गाय का पोषण हम नहीं कर रहे वरन् हम स्वयं गाय द्वारा पोषित हो रहे हैं। गौमाता के उपकारों को देखा जाय तो सच में वे अनन्त हैं। गौमाता व गौमूत्र का महत्त्व जान लिया जाय तो केवल गाय ही नहीं बछड़े–बैल जो उपेक्षित हैं, सम्पूर्ण गौवंश इस उपेक्षा से बच जाय। बैल से चलित जनरेटर से विद्युत् शक्ति का घर–घर में उपयोग होगा। इस उपयोग से विद्युत् शक्ति तो बचेगी ही देश की आर्थिक व्यवस्था में भी डीजल का भार कम हो जाएगा। गौवंश का आधा भाग जिसका उपयोग कुछ नहीं है, उसे लोग कटने भेज देते हैं। बछड़े के जन्म से हिन्दू दुःखी हो जाता है। आज 'श्रीमानमंदिर' की माताजी गौशाला में लूली–लंगड़ी, असहाय गौवंश का न केवल पोषण प्रत्युत अखण्ड हरि नाम संकीर्तन द्वारा पूजन भी हो रहा है। वर्तमान में 'माताजी गौशाला' में गाय के गोबर से बिजली, अन्य गैसें बनाई जा रही हैं जो अनेक कार्यों (विविध वाहन चालन इत्यादि) में बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं ... अब बैल–बछड़े भी उपेक्षा से बच रहे हैं व उनकी उपयोगिता दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। 'श्रीमाताजी गौशाला' ने १२ लाख गौवंश की सेवा का संकल्प लिया है, जो अति शीघ्र ही सफलता की ओर बढ़ता जा रहा है।

श्रीराधारानी की सतत् स्मृति बनी रहे, दिन–रात उनका चिन्तन बना रहे, यही श्रीजी की कृपा का सच्चा फल है, यही सच्ची कृपा है।

☀ हे हिन्दूजनों ! उठो–जागो... ☀

अंग्रेज गवर्नर 'मैकाले' ने एक योजना का प्रस्ताव '२ फरवरी १८३५' को इंग्लैण्ड में 'ब्रिटिश–संसद' के समक्ष पेश किया था, जिसे सुनकर ही 'अंग्रेज–सरकार' ने 'भारतवर्ष के वास्तविक रहस्य' को समझकर सबसे पहले उसी पर प्रहार किया (भारत के गुरुकुल व गौवंश को पूर्ण रूप से नष्ट करने का प्रयास किया) । मैकाले की योजना का प्रस्ताव निम्नलिखित है –

मैकाले का संदेश

(भारत की रीढ़ की हड्डी 'गुरुकुल, गौवंश' को तोड़ दो)

"मैं (मैकाले) भारत के कोने–कोने में घूमा हूँ और मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं दिया जो भिखारी व चोर हो । इस देश में मैंने इतनी धन–संपत्ति देखी है, इतने ऊँचे चारित्रिक आदर्श और इतने गुणवान मनुष्य देखे हैं कि मैं नहीं समझता कि हम कभी इस देश को जीत पायेंगे, जब तक कि उसकी रीढ़ की हड्डी को नहीं तोड़ देते, जो है इसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत (गुरुकुल व गौवंश) । इसलिए मैं प्रस्ताव रखता हूँ कि हम इसकी पुरातन शिक्षा–व्यवस्था, उसकी संस्कृति को बदल डालें; क्योंकि यदि भारतीय सोचने लगे कि जो भी विदेशी व अंग्रेजी हैं, वह अच्छा है और उनकी अपनी चीजों से बेहतर है; तो वे अपने आत्मगौरव और अपनी ही संस्कृति को भुलाने लगेंगे और वैसे बन जायेंगे जैसा हम चाहते हैं – एक पूरी तरह से दमित देश ।"

उपरोक्त लिखित मैकाले का प्रस्ताव २८ नवम्बर २००७ को समाचार–पत्र (दैनिक भास्कर) में निकाला गया था । अंग्रेज जिन्होंने भारत पर साम्राज्य किया था, उनकी आश्चर्यजनक दो बातें ये ही थीं – भारतीय गुरुकुल व्यवस्था व कृषि व्यवस्था को विनष्ट करने का सतत् प्रयास । ब्रिटिश राज्यपाल 'रॉबर्ट क्लाइव' ने भारत की कृषि व्यवस्था पर विस्तृत खोज की थी, इस खोज एवं ब्रिटिश–नीतियों से जो परिणाम हुए वह ये हैं – भारत की कृषि में गाय की प्रथम प्रधानता है और गाय की मदद के बिना भारतीय कृषि का सम्पादन नहीं होता है । भारतीय कृषि का मूल आधार है 'गाय' है, उसका विलोपन करना आवश्यक है । भारत में सबसे पहला कसाई खाना सन् १७६० में आरम्भ हुआ था, जहाँ पर ३०,००० गायों को मारा जाता और लगभग एक करोड़ गाय १ वर्ष के अन्दर नष्ट हुई । उसने यह अंदाज लगाया था कि बंगाल में गाय की संख्या इंसान की संख्या से अधिक है और इसी तरह की स्थिति भारत के अन्य भागों में थी । भारत देश में अस्थिरता लाने के विचार से कसाई खाने का आरम्भ करने की बहुत बड़ी साजिश की गयी थी । एक बार जब गाय को नष्ट किया जायेगा, तब वहाँ पर गोबर से बनी खाद नहीं रहेगी और किसी तरह के रोग– विनाश के लिए 'गौमूत्र' भी नहीं रहेगा । देश को छोड़ने से पहले रॉबर्ट क्लाइव ने भारत में अनगिनत कसाई खाने खुलवा दिये थे । कसाई खाने के बिना भारतीय कृषि की स्थिति की अद्भुत कल्पना को समझना । सन् १७४० में तमिलनाडू के आकोट जिले में ५४ कुन्तल चावल की उपज एक एकड़ भूमि में हुई, जहाँ पर साधारण खाद और रसायन जैसे गाय का मूत्र और गोबर का उपयोग ही किया था । सन् १९९० तक परिणाम में ३५० कसाई खाने दिन–रात इस कार्य में थे, भारत में गाय लगभग नष्ट हो गयी थी और भारत को इंग्लैंड के दरवाजे खटखटाने पड़े । आजादी मिलने के बाद हरित क्रांति (खाने के लिए आत्मनिर्भरता) के नाम पर भारत में रासायनिक खाद का अत्यधिक उपयोग हुआ ।

भारत को जाग्रत करने के लिए ये सांकेतिक चेतावनी है । वर्तमान समय में मोह–निद्रा में सोते हुए हिन्दुओं को जागने की अति आवश्यकता है, जिससे हम सब हिन्दू मिलकर के अपनी दीर्घकाल से खोई हुई आध्यात्मिक व सांस्कृतिक विरासत (गुरुकुल–शिक्षा–पद्धति, गौवंश इत्यादि) को नष्ट होने से बचाकर संवर्द्धन–संपोषण करके 'भारतमाता' की सच्ची सेवा करें... फलस्वरूप 'भारत देश' अपने स्वरूप में पुनः लौटकर अति शीघ्र ही जगद्–गुरु बनेगा । पूज्य श्रीबाबा महाराज द्वारा नित्य हो रही 'आराधना–शक्ति' से सम्पूर्ण सृष्टि पर प्रभाव पड़ रहा है, ब्रजभूमि का स्वरूप भी वैसा ही अच्छा होता जा रहा है, जैसा श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को मधुर ब्रज–वृन्दावन का

दर्शन कराया था –(श्रीभागवतजी१०/१३/५९) जहाँ नाना निविड़ निकुञ्ज हैं, वही है वृन्दाकानन । इसी प्रयास में 'श्रीमानमन्दिर' से लाखों की संख्या में वृक्षारोपण हुआ है और हो रहा है। 'ब्रज' सम्पूर्ण विश्व को शिक्षा देता है। ब्रजगोपियों ने कृष्णावतार का यही तो रहस्य समझाया है – (श्रीभागवतजी१०/३१/१८) इस मधुर वृन्दावन में राग–द्वेष नहीं है – (श्रीभागवतजी १०/१३/६०) नैसर्गिक–दुर्वैर प्राणी जैसे – सिंह–हिरण, सर्प–नेवला, बाज–कबूतर आदि वन्य पशु–पक्षी एवं मनुष्य जिनका परस्पर स्वाभाविक बैर है, यह उस दिव्य ब्रज में नहीं है; क्योंकि प्रभु के नित्य धाम में ''अजितावास द्रुतरूट्'' 'रूट्' माने क्रोध, 'तर्षा' माने प्यास (राग) नहीं है। जहाँ राग–द्वेष नहीं है वही है वास्तविक वृन्दावन। अतः युगल से प्रार्थना करते हैं कि हम लोगों को शक्ति दें, जिससे हम ब्रज को ब्रज बनायें, इसकी सुन्दरता–मधुरता का पारस्परिक राग–द्वेष से नाश न करें। श्रीजी हम सबको द्वन्द्वरहित बनायें, यही याचना है।

(बाबाश्री के उद्बोधन '७/२/२०२३' से संकलित)

देश में क्या हो रहा है, मैं (श्रीबाबामहाराज) जानता नहीं हूँ क्योंकि मैं अखबार पढ़ता नहीं, कोई खबर सुनता नहीं लेकिन फिर भी ख़बरें कान में आ जाती हैं। कोई कह रहा था कि पाकिस्तान में बड़ा संकट है। पाकिस्तान का विभाजन–सा होने वाला है। ये बात सुनकर हमें प्रसन्नता नहीं हुई क्योंकि ये भी हमारे भारतीय लोग ही हैं, इन्होंने नासमझी किया, पाकिस्तान बनाया और अब वह देश गर्त में जा रहा है। जैसा किया, वैसा पाया। प्रभु ने जो नियम बनाया, हम उस नियम के साक्षी मात्र हैं बस, सहायक नहीं हैं, विरोधी भी नहीं हैं। 'प्रभु' जो करते हैं, उसका विरोध करना गलत है, सब कुछ उनकी इच्छा से होता है। यदि उनकी इच्छा होगी तो पाकिस्तान को कोई बचा नहीं पायेगा। यदि उनकी इच्छा नहीं होगी तो कुछ नहीं होगा। हम तो ये जानते हैं कि जो कुछ होता है, भगवान् करता है और जो भगवान् करता है, ठीक करता है। "सत्यं शिवम् सुन्दरम्" ... इसलिए मैं इतना ही जानता हूँ कि यदि पाकिस्तान टुकड़ों में बँटता है तो भी ठीक है और नहीं बँटता है तो भी ठीक है। जो कुछ होगा, प्रभु करेगा किन्तु हमने सुना अवश्य है कि पाकिस्तान विघटन की स्थिति में पहुँच गया है। क्यों पहुँच गया, भारत के प्रति विद्रोह से। उसने अकारण ही भारत से शत्रुता की। अकारण शत्रुता से निश्चित पतन होता है। यदि यह देश भारत का विरोध छोड़ दे तो विश्व की कोई शक्ति नहीं है जो पाकिस्तान का कुछ भी कर दे और यदि यह भारत का विरोध नहीं छोड़ेगा तो निश्चित है कि उसका विनाश हो जाएगा। 'भारत माता' एक सच्ची माता है। क्यों ? क्योंकि भगवान् भी उसके अधीन हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक 'भगवान्' उसके अधीन हैं। आप कहेंगे कि ये तो भारत से पक्षपात कर रहे हैं। पक्षपात हम अवश्य कर रहे हैं और करेंगे क्योंकि भगवान् का अवतार 'भारत माता' की पुकार से होता है। जब–जब अवतार हुआ है, 'भारत माता यानि पृथ्वी माता' 'गाय' का रूप धारण कर गयी और भगवान् से प्रार्थना की। आर्ष ग्रन्थों में देख लो, जब–जब 'गौ' का रूप धारण करके पृथ्वी माता गयी है, तब भगवान् का अवतार हुआ है। यह ठीक है कि भारत ऋषि–मुनियों का देश है किन्तु अवतार तभी हुआ है, जब 'गौ रूपा भारत माता' ने जाकर क्रन्दन किया है तो भगवान् पिघल गये। भगवान् राम बने, कृष्ण बने, अनेक अवतार लिए 'भगवान्' ने इस भारत भूमि के कारण। जो देश इस भारत से विरोध करेगा तो वह चाहे पाकिस्तान ही नहीं अमेरिका हो, चाहे रूस हो, सारा संसार भी यदि भारत का विरोध करेगा तो उसका कल्याण नहीं होगा, यह निश्चित बात है। 'भारत' देश भगवान् का है, भगवान् इस देश में अवतार लेते हैं, इस देश में क्रीड़ा करते हैं। विश्व का कोई भी राष्ट्र यदि भारत का विरोधी है, भारत का विरोध करेगा तो वह राष्ट्र समाप्त हो जाएगा। इसका प्रमाण देख लो – इंग्लैंड। इंग्लैंड ने भारत का दोहन (शोषण) किया तो क्या फला–फूला ? आज उसकी क्या दशा हो रही है। वह देश बच इसलिए रहा है क्योंकि एक भारतीय व्यक्ति वहाँ का प्रधानमन्त्री बना हुआ है। इसलिए हम यही कहेंगे कि यह देश (भारत) भगवान् का है, इस देश में भगवान् अवतार लेते हैं, इस देश में वे खेलते हैं, इस देश में वे गौरक्षा करते हैं और ऐसे पवित्र देश का जो विरोध करेगा, उसका कल्याण नहीं होगा |

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥

(श्रीरामचरितमानस, उ.का.–१२२)

मैं निश्चय करके कह रहा हूँ, मेरी वाणी कभी अन्यथा नहीं हो सकती – केवल भगवान् की विशुद्ध भक्ति से भवसागर पार हो जाओगे। भक्ति के साधन यही हैं – भगवान् के गुणों को गाओ, भगवन्नाम लो और अन्य साधन मत करो (लेकिन इस बात को समझना बहुत कठिन है, अन्य साधनों में हम लोगों का अभिनिवेश हो जाता है)।

श्री सीताराम विवाह महोत्सव की झलकियाँ
(श्री माताजी गौशाला,बरसाना)

श्री सीताराम विवाह महोत्सव की झलकियाँ
(श्री माताजी गौशाला,बरसाना)

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संसथान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2021-2023 AT 22.12.23]